आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१९ * अंक-८ * अप्रैल २०२५

जन्मादि रहित होनेका मार्ग प्रकाश करनेवाले ज्ञानभानु बोधिबीज प्राप्त कहान गुरुदेव...

कहान जयंतीके मंगलमय अवसर पर ''आत्मधर्म''के अंकका अवलोकन

भक्तोंके सर्वस्व, अनुपम उपकारी, गुरुदेवश्रीके चरणकमलमें

१३६वाँ मंगलमय जन्म-जयंती के अवसर पर

भाव पुष्प-भक्ति सुमन सादर समर्पण

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जिसके चित्तका चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) है ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्तका सेवन करें कि 'मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूँ और जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकारके भाव प्रकट होते हैं वे मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सभी मेरे लिये परद्रव्य हैं' ।८३। (श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार टीका-१८५)

● जो ज्ञानादिके भी रूपमें क्षायोपशमिकभाव है वह भी तत्त्वदृष्टिसे विशुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है ।८४। (श्री अमितगति आचार्य, गाथा-५८)

● यहाँ कोई प्रश्न करता है कि विभाव परिणामोंको जीवस्वरूपसे 'भिन्न' कहा, वहाँ 'भिन्न'का भावार्थ तो मैं समझा नहीं। 'भिन्न' कहने पर, 'भिन्न' है वह वस्तुरूप है कि 'भिन्न' है वह अवस्तुरूप है? उत्तर ऐसा है कि अवस्तुरूप है। उसी कारणसे शुद्ध स्वरूपका अनुभवशील है जो जीव उसको विभाव परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते। उत्कृष्ट है, ऐसा शुद्ध चैतन्य द्रव्य दृष्टिगोचर होता है।८५।

(श्री राजमलजी, कलशटीका, कलश-३७)

● निश्चयसे विद्यमान गुणस्थान, मार्गणास्थान, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं वे समस्त ही अकेले पुद्गल द्रव्यका कार्य अर्थात् पुद्गल द्रव्यके चित्रों जैसी हैं। ऐसा हे जीव! निःसन्देहरूपसे जानो।८६।

(श्री राजमलजी, कलशटीका, कलश-३९)

● उपयोगसे कषाय और कषायसे उपयोग (उत्पन्न) नहीं होते और मूर्तिक-अमूर्तिकका परस्पर एक-दूसरेसे उत्पाद सम्भव नहीं है।८७।

(श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, अधि. ३, श्लोक-२१)

● जैसे सोना कुधातुके संयोगसे अग्निके तापमें अनेकरूपमें होता है तो भी उसका नाम सोना ही रहता है तथा सर्राफ कसौटीके ऊपर कसकर उसकी रेखा देखता है और उसकी चमकके अनुसार कीमत लेता-देता है, उसी प्रकार अरूपी महादीप्तिवाला जीव, अनादिकालसे पुद्गलके समागममें नव तत्त्वरूप दिखाई देता है, परन्तु अनुमान प्रमाणसे सर्व अवस्थाओंमें ज्ञानस्वरूप एक आत्मरामके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।८९।

(श्री बनारसीदासजी, नाटक समयसार, जीवद्वार, पद-९)

वर्ष-19
अंक-8

वि. संवत 2080
April A.D. 2025

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

अध्यात्म दिवाकर परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १३६वें मंगल जन्मोत्सव अवसर पर

अजन्म-अजर-अमर होनेके मंत्रोंको समझानेवाले
कहान गुरुवर्य अर्थात्....

मोहनिद्रासे जगाकर... सावधान-जागृत करनेवाले,
भववनमें भटक रहे जीवको... मोक्षपथ पर लानेवाले,
अज्ञान-अंधकारको दूर करके... ज्ञानप्रकाश फैलानेवाले,
क्रियाकांडमें फँसे हुएको.... ज्ञानमार्ग दर्शानेवाले,
राग-द्वेषमें अटके हुएको... वीतराग स्वरूप समझानेवाले..

- इस भरतभूमिमें जब अज्ञान अंधकार आच्छादित था, तब आत्मज्ञानका प्रकाश फैलानेवाले कहान सूर्य उदित हुआ...
- भव्यजीवों सत्पथ भूलकर भव-अरण्य में भटकते थे, तब गुरुदेवरूपी मोक्षमार्गका पथ दर्शानेवाले मिले...
- मुमुक्षु जीवोंको मिथ्यात्व अज्ञानके कारण ज्ञाननेत्र बंध थे, तब ज्ञानरूपी अंजन लगानेवाले कहानवैद्य मिले....
- चोर्यासी लाख योनिरूपी संसारसमुद्रमें जीव जब डूब रहे थे, तब तारणहार–पार लगानेवाले कहाननाविक मिले...
- पामरको परमात्मपनेकी धून लगानेवाले परमात्मदूत...
- भक्तोंको 'भगवान' कहकर संबोधन करनेवाले भाविके भगवान...
- परपदसे पीछे मुड़कर स्वपदकी ओर ले जानेवाले मोक्षपदके उमेदवार...

✍ ज्ञान-वैराग्यकी वृद्धि करानेवाली, स्वपर और स्वभाव-विभावका भेदज्ञान करानेवाली, वीर्यका शूरातन चढ़ानेवाली, ध्येयके ध्यानकी धून जगानेवाली, अमृतमय वाणीका रसपान करनेवाला परम सौभाग्य निरंतर रहे...

✍ आपका मंगलमय-उत्तम पवित्र सानिध्य, निर्मल छत्रछाया, कल्याणकारी निश्रा सदैव प्राप्त हो...

✍ आपकी कृपादृष्टिसे इन्द्रिय लोलुपताकी निवृत्ति हो, तत्त्व प्राप्ति, लोलुपता वृद्धिगत हो...आनंद निर्झरित अपूर्व उत्तम आत्मतत्त्व प्रकट हो, निजस्वरूपमें शीघ्र प्रवृत्ति हो... यह ही आशिष चाहते हैं....

सद्गुरु समर्पण

दुनियामें दर्शनीय वस्तुएँ अनेक हैं, किन्तु दर्शनीय, वंदनीय और पूजनीय तो परमात्माके प्रतिनिधिसमान जीवंत मोक्षमार्ग श्री सद्‌गुरु ही हैं । भारतका इतना सद्‌भाग्य है कि ऐसे सद्‌गुरुका सद्‌भाव अभी बहुत लम्बे समय तक रहनेवाला है।

कोई विशिष्ट व्यक्ति विशेषकी यह बात नहीं है, मात्र श्री सद्‌गुरुकी महिमा और माहात्म्य बतानेकी यह महिमावंत बात है। श्री सद्‌गुरु का स्मरण होने पर हर्षसे गद्‌गद्‌ हो जाते है, आनंदके अश्रु आ जाते है। उनके अति निष्कारण करुणामयी उपकारसे हम उपकृत हुए है, जिसका प्रत्युपकार कैसे हो, किसी भी कालमें न दे सके ऐसा उपकार किया होनेसे हम सदा उनके ऋणी है और ऐसे शिष्यके हृदयमें तो यह मात्र बीज ही है।

वास्तविक भूखे मनुष्यको कोई भोजन कराये, तृषावंतकी तृषा शांत करे, अरे! ग्रीष्म तापसे तड़पते या तीव्र शीतसे कंपते हुएको या भारी वर्षासे भीगतेको कोई आशियाना दे अथवा फाँसी या उम्रकैदवालेको सजासे मुक्त कराये उस समयकी तो तृप्ति और मुक्तिके आनंद और आभारकी अनुभूति व्यक्त करती उसकी अंतरकी छवीको दर्शाती हुई आँखे देखने जैसी होती है। लेकिन उससे भी विशेष तो अनंत अनंत कालसे असह्य और अकथ्य ऐसे अपार दुःखोंको भोग भोगकर भवभ्रमणसे जो थक गया है और उस दुःखसे मुक्त होनेका ही जो वास्तविक अभिलाषी है ऐसे

भव्य जीवोंको जब सद्गुरुका मिलन होता है और वे संसारसे मुक्त होनेकी मर्मभेदक रीति समझाते है, तब आनंद और उपकारकी अभिव्यक्तिकी भावनासे परिपूर्ण भरी हुई अंतरकी उर्मियाँ प्रकट करती भक्तोंकी भक्ति-स्तुति वास्तवमें श्रवण करने जैसी अद्भुत होती है। ऐसे श्री सद्गुरुके महिमाकी क्या बात की जाय ?

❀ वैशाख सुद द्वितीया ❀

अनुपमेय-अवर्णनीय-अद्वितीय गुरुदेवश्रीका जन्म अर्थात् आत्मार्थीको सम्यग्दर्शनके जन्मका सुकाल; मनुष्यजन्मकी सफलताका सुयोग; जैनशासनकी उन्नत्तिका सुअवसर; पंचमकालका चौथेकालमें परिवर्तन; भरतक्षेत्रका महाविदेहक्षेत्रमें परिवर्तन; पामरको प्रभुताकी प्राप्ति; क्रमबद्धके सिद्धांत द्वारा अकर्तापनेकी घोषणा; निमित्त-उपादानका निर्णय; निश्चय-व्यवहारकी यथार्थ समझ; पर्यायमात्रकी स्वतंत्रताका सिंहनाद; भूले हुएको शुद्धात्माके स्मरणका प्रसंग; उदय प्रसंग पर शूरवीरता प्रकट करनेका अवसर; वीतराग-विज्ञानीका जन्म; मोक्षप्राप्तिके अध्ययनका समय; विभावसे निवृत्ति पानेका क्षण; शाश्वत निज निधि पानेका पल; भीषण दुःखसे छूटनेका प्रसंग और संपूर्ण जगतसे निस्पृह होनेका अवसर....

महान गुरु कहान

आवी मारा जीवननी अणमोल आ घडी,
गुरुवर कहान बिराजे मारे आंगणे अहीं;
गुरुराज वधावुं आजे भक्तिभाव भरी,
आवो भक्तो मंगळ गीत गाईए साथे मळी...आवी...(१)

भक्त तारणहार अहो ! गुरु कहान अमारा,
'भगवान' कही बोलावे ए उपकार अपारा;
ज्ञानसिंधु, कृपासागर अंतर समता भरी,
पामरने प्रभुता बतावे एवी अमृत वाणी...आवी...(२)

सीमंधर लघुनंदन वीर प्रभुना वारसदार,
जिनवाणी रहस्य खोली पहोंचाडे मोक्षद्वार;
कुंदना मार्गे चाली शासनमां उज्ज्वलता भरी,
तुज गुणोने याद करी वंदन करुं फरी फरी...आवी...(३)

देव-शास्त्र-गुरुनी ओळखाण करावी साची,
साधनापंथ बताव्यो भेदज्ञान मंत्र आपी;
आपे कहेल तत्त्व-अभ्यास करुं घडी घडी,
भवसागर पार थाउं ज्ञायक स्वरूप जाणी...आवी...(४)

निज आतम देवने जाणुं तुज आशिष वडे,
आत्मानुभव करी त्यागुं संसार हवे;
आत्महित करवानो अवसर आव्यो छे जरी,
चूकी न जाउं एवी भावना जागी छे खरी...आवी...(५)

आवो भक्तो आवो सहु आनंद मंगल करीए,
गुरुकहानना शरणमां सदाय रमी रहीए;
गुणगान तारां शां-शां करीए आजे अमे,
डूबता अमने तार्यां छे उपकारी तमे...आवी...(६)

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा-६१ के प्रवचनमेंसे)

केवलज्ञान सर्वथा अनुमोदन करनेयोग्य है

यह गाथा ६१में केवलज्ञान सुखस्वरूप है ऐसा निरूपण करके उपसंहार करते है।

केवलज्ञान सभी पदार्थोंको भेद करके जानता है और केवलदर्शन लोकालोकको सामान्यरूपसे भेद करे बिना देखता है, अर्थात् कि लोकालोकमें फैला हुआ है। सर्व अज्ञान विलयको प्राप्त हुआ है और जो इष्ट था वह उसे प्राप्त हुआ है अर्थात् केवलज्ञान स्वयं ही सुखस्वरूप है। भगवान केवलज्ञानी परिपूर्ण सुखी है। कुटुम्ब, पैसा, राग या अपूर्णदशा सुखका कारण नहीं है। अपूर्ण ज्ञान स्वभावकी ओर कार्य करे तो केवलज्ञान होता है और परसन्मुख होकर कार्य करे तो संसारमें भटकता है।

ज्ञानका ज्ञानरूप रहना और रागरूप उस ज्ञानका नहीं रहना वह अनेकान्त है और वह ही सुख है। ज्ञान ज्ञानरूप नहीं रहता ज्ञानका रागरूप होना और परका कर्ता होना वह मिथ्या एकांत है और वह ही दुःख है। परपदार्थोंको पलट दूँ, दया-दानादिके शुभभावसे धर्म होगा। विकार सन्मुख होकर विकारकी रुचि करके विकार को कम कर दूँ, ऐसा अज्ञानभाव अज्ञानदशामें कार्य करता है। ऐसा अज्ञानभाव स्वयं ही विघ्न है और ऐसे विघ्नसे अज्ञानी स्वयंके ज्ञानस्वभावका घात करता है।

केवलदर्शन और केवलज्ञान स्वतंत्ररूपसे विकसित हुआ है क्योंकि उसमें कोई विघ्न नहीं है। जिसप्रकार संकुचित हुआ कमल सूर्य उदित होने पर पूर्णरूपसे खिल जाता है वैसे केवलज्ञान परिपूर्णरूपसे खिल उठा है। संसारदशामें ज्ञानकी अज्ञानदशा संकुचित थी उसका सर्वथा नाश हो चुका है। मात्र स्वसन्मुख दशा हो गई है। इसलिये विघ्नका अभाव जिसका कारण है ऐसा सुख वह केवलज्ञानका स्वरूप है, यहाँ ज्ञान और सुखका अभेद विवक्षासे, अविनाभावी सम्बन्धसे कथन किया है।

श्री चंद्रप्रभ जिन-स्तुति

है विधिषेध वस्तु और प्रतिषेध रूपं,
जो जाने युगपत् है प्रमाण स्वरूपं;

श्री स्वयंभू-स्तोत्र

अब केवलज्ञान सुखस्वरूप है उसे दूसरे प्रकारसे समझाते है। केवलज्ञान सुख है क्योंकि सर्व अनिष्टका नाश हुआ है। शाताके प्रसंगमें यह पदार्थ सुखरूप है ऐसी मान्यता, अशाताके प्रसंगमें यह प्रतिकूल संयोगों हैं वह दुःखका कारण है ऐसी मान्यता, धर्मके नाम पर शरीरकी क्रिया और पुण्यकी क्रिया उससे लाभ होगा ऐसी मान्यता वह अनिष्ट है। ऐसे अनिष्टका केवलज्ञानमें नाश हुआ है।

सुखका विपक्ष दुःख है और दुःखका साधन अज्ञान है। केवलज्ञानमें अज्ञान पूर्णरूपसे नाश हो गया है, इसलिये दुःखका साधन नहीं है। और दुःखका अभाव होनेसे परिपूर्ण सुख है। सुखका साधन परिपूर्ण ज्ञान है इसलिये केवलज्ञान वह ही परिपूर्ण सुख है।

यहाँ दुःखका साधन अज्ञान कहा है। सगे-सम्बन्धीका मरण वह दुःख नहीं है लेकिन यह जीव मेरे थे और उससे मुझे सुख था ऐसा जो अज्ञानभाव वह दुःख है। परपदार्थ कोई आत्माके नहीं है। एक ज्ञानतत्त्व ही आत्माका है।

अज्ञानी जो अज्ञानभाव करता है उसमें सुख नहीं और अल्पज्ञानी है वह पूर्ण सुखी नहीं है। केवलज्ञानी एक ही परिपूर्ण सुखी है।

प्रश्न : ज्ञानतत्त्वमें ही सुख है और पुण्य तथा जड़ तत्त्वमें सुख नहीं, तो फिर जिनमंदिरोंकी स्थापना और पंचकल्याणक महोत्सव होते है उनका क्या? तो कहते है कि : भाई! यह जिनमंदिर आदि तो जड़की अवस्था है और वह जड़के कारणसे होती है। साधकजीवको कमजोरीके कारण शुभराग होता है और ज्ञेयकी ओर लक्ष जाता है लेकिन उस जड़की अवस्थाका और शुभरागका तो ज्ञाता ही है। अभी भी ज्ञानतत्त्व ही कार्य कर रहा है। ज्ञेयों ज्ञेयोंके कारणसे आये है। रागके कारण ज्ञेयों (मंदिर आदि) आये नहीं और राग हुआ इसलिये ज्ञान हुआ ऐसा भी नहीं है। ज्ञानकी क्रिया, रागकी क्रिया और जड़की क्रिया तीनों स्वतंत्र है। जैसे जैसे ज्ञेयों होते हैं वैसे ज्ञेयोंको जान लेना ऐसा ज्ञानका स्वभाव है। ज्ञेयोंका माहात्म्य छोड़कर ज्ञानस्वभावकी महिमा लाना वह धर्मका प्रारम्भ है, और ज्ञानस्वभावमें परिपूर्ण एकाग्र होनेपर केवलज्ञान प्रकट होता है वह पूर्ण धर्म है और वह ही परिपूर्ण सुख है।

कोई धर मुख्यं अन्यको गौण करता,
नय अंश प्रकाशी पुष्ट दृष्टांत करता।५२।

केवली भगवानको उत्कृष्ट सुख है

(प्रवचनसार गाथा-६२ के प्रवचनमेंसे)

इस गाथामें केवली भगवानको उत्कृष्ट सुख है। ऐसा आचार्य भगवानने कहा है। वहाँ ''ऐसा वचन सुनकर'' ऐसा कहा है लेकिन ''पढ़कर'' ऐसा नहीं कहा। उसका अर्थ यह है कि शिष्य सुनने तक तो आया है। भगवानको उत्कृष्ट सुख है। अर्थात् पुण्य-पाप और परवस्तुमें सुख नहीं। और सांसारिक सुखमें भी सुख नहीं, ऐसा सुनकर जो श्रद्धा करता नहीं–स्वीकार करता नहीं वह जीव अभव्य है, नालायक है। अनंत निगोद, नरकके भवमें भटकनेके लायक है।

आत्मामें सुख है। उसका स्वीकार करता नहीं, वह आत्माके शांतिका खूनी है। व्रत, तप आदि बाह्य क्रियामें सुख है ऐसा जो मानता है वह जीव आत्मामें सुख है उसे मानता नहीं है। इसलिये वह पुण्य-पापमें जल रहा है। वह जीव नरक-निगोदमें छेदनेका भेदनेका कामी है। यहाँ व्यवहारके आश्रयसे सुख नहीं ऐसा समझाया है। अर्थात् व्रत, तप आदिमें जिसने सुख माना है उसे आकुलतामें सुख है ऐसा माना है। इसलिये वह अभव्य है, नालायक है और आत्मामें सुख है ऐसा स्वीकार किया वह भव्य है, लायक है।

इस जगतमें शरीरका कार्य करूँ, स्त्रीके कार्य करूँ आदि भाववाला जीव स्वयंके स्वभावका घातके कारण और आकुलताके कारण होनेवाले सुखाभासको अर्थात् जो सुख नहीं है उसमें सुखकी कल्पना करता है और ऐसे जीवोंको मूढ जीव सुखी कहते हैं। पैसावाले, कुटुम्बवाले सुखी है ऐसा मानना वह मूढ जीवोंकी मिथ्या मान्यता है। वास्तवमें उसमें सुख ही नहीं। जैसे छोटा बच्चा लकड़ीको घोड़ा कहे ऐसे मिथ्या मान्यता है। वास्तवमें तो आकुलताके कारण वह दुःखी है।

जैसे पहाड़की गुफामें नेवलादि रहते है वैसे बंगले में सेठ लोग रहते है दोनोंमें कोई अंतर नहीं है। दोनों दुःखी है। उनको सुखी कहना तो जैसे बालक विष्टाको चाटता है और सुख मानता है, वैसे पुण्य-पाप कि जो आत्माके सुखका विकार है उसे चाटकर सुख मानता है वह वास्तवमें दुःखी ही है।

केवली भगवान कि जिन्होंने घातिकर्मोंका क्षय हुआ है। उनके स्वभावका घात नहीं

वक्ता इच्छासे मुख्य इक धर्म होता,
तब अन्य विवक्षा विन गौणता मांहि सोता;

होनेसे आकुलता नहीं और सुखके कारणभूत स्वभावका घातका अभाव और सुखके लक्षणका–अनाकुलपनेका सद्‌भाव होनेसे वास्तवमें सुखी है। अज्ञानी संसारमें अनुकूलतामें राग तथा प्रतिकूलतामें द्वेषके कारण दोनों प्रकारसे दुःखी है और आत्मा चैतन्य ज्ञाता है। उसमें ही सुख है। ऐसा जिसे श्रद्धान नहीं। इसलिये वे मुक्तिरूपी अमृतपानसे दूर रहनेवाला अभव्य नालायक है। जैसे मृग मरीचिकाके जलका अनुभव करता है। वैसे अज्ञानी दुःखमें सुखकी कल्पना करता है।

जो इस वचनको अर्थात् ''आत्मामें सुख है'' उसका अभी स्वीकार करते हैं, श्रद्धान करते है, वे लायक है–भव्य है। पुण्यके संयोग मिलेंगे और बादमें धर्म करेंगे ऐसा मानकर पुण्य करनेवाले अभव्य है। क्योंकि जो यह वचनका अभी स्वीकार करते नहीं उनके अभिप्रायमें भविष्यमें भी स्वीकार करना नहीं है–इस प्रकार वर्त रहा है। अर्थात् अनंतकालमें भी मुझे सुखकी अभिलाषा नहीं है। ऐसा विचार करता है वह अभव्य है। केवलज्ञानी तथा साधक जीवोंका जो अनादर करता है और पुण्य-पापमें सुख है ऐसा माननेवालेका आदर करता है वह चोरासीके अवतारके दुःखका स्वीकार करता है। निगोदादिमें सुननेको मिला नहीं और यहाँ सुननेका संयोग मिला तदपि श्रद्धान करता नहीं है, संमत होता नहीं है वह जीव नालायक है।

भव्य पात्र जीव ''केवली उत्कृष्ट सुखी है'' उनके वचनका आदर करते है इसलिये वह भव्य है, लायक है। ''उन वचनोंको अभी ही स्वीकार करता है''–ऐसे हाँ के कारणमें लिया है, वह निकट भव्यके लिये लिया है। अज्ञानीको वे वचन निमित्तरूप हुए नहीं। इसलिये 'वचन' ऐसा शब्द कहा नहीं है, इसलिये भव्यके लिये ''वचन सुनते ही''–ऐसा लिया है। वे मुक्तिरूपी लक्ष्मीको अल्पकालमें प्राप्त करनेके लायक है और जो आगे जाकर उपरोक्त स्वीकार करेगा वह दूरभवी है।

श्रोता : मोक्षकी प्राप्ति लोटरीसे होती है कि नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मामें सुख है और परमें सुख नहीं ऐसी श्रद्धारूपी लोटरी ले तो उसमेंसे मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और परमें सुख है ऐसा आत्मामें सुख नहीं ऐसे श्रद्धानकी लोटरीसे संसारके दुःख मिलते हैं। (क्रमशः) ✻

अरिमित्र उभयविन अेक जन शक्ति रखता,
है तुज मत द्वैतं, कार्य तब अर्थ करता।५३।

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

निमित्तका निराकरण **प्रवचन नं.-३६ (गाथा-३५)**

वस्तुकी स्थिति ही ऐसी है कि उसमें अन्य कोई बदलाव कर सकता ही नहीं है। प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय पलटती ही रहती है उसे अन्य कोई परिणमित करा सकता नहीं है। आत्मा और परमाणु आदि सभी पदार्थों स्वतंत्र है–वस्तु है, प्रति समय पलटनेका उसका स्वभाव है अतः वह पलटती ही है उसे अन्य कैसे पलटाये ?

आगे दृष्टांत आ गया कि तोताको पढ़ानेसे वह पढ़ेगा लेकिन बगुलाको पढ़ानेसे वह पढ़ता नहीं है क्योंकि तोतामें उस प्रकारकी योग्यता है जो बगुलेमें नहीं है। जगतके स्वतंत्र द्रव्य है उसे अन्य कैसे परिणमित करा सकता है ?

वस्तु कायम ध्रुव रहकर उसमें उत्पाद-व्ययका होना उसका स्वभाव है इसलिये उत्पाद भी स्वयंसे होता है और व्यय भी स्वयंसे ही होता है। इसलिये यहाँ कहा कि वास्तवमें किसी भी कार्यके होनेमें बिगड़नेमें अर्थात् उत्पाद-व्ययमें योग्यता ही साक्षात् साधक होता है। जैसे एक साथ गतिरूप परिणमनके लिये तैयार हुए जड़-चेतनमें गति पैदा करनेवाली वह जड़-चेतनकी ही गमन करनेकी शक्ति है। वस्तुमें जो पर्याय होनेवाली हो उस ओर वस्तुकी उन्मुखता हो, दूसरी ओर न हो, स्वयंकी योग्यता अनुसार ही कार्य होता है। तभी सहकारी निमित्त होता है लेकिन वह निमित्त है इसलिये कार्य होता है ऐसा नहीं है।

कोई ऐसा कहे कि आप जब अन्यको समझाते हो तभी दूसरा समझता है ऐसा आपका हेतु होता है इसलिये निमित्त कुछ करता नहीं है यह बात भी न रही और क्रमबद्धपना भी न रहा। उसे कहते हैं कि भाई ! वाणी वाणीके कालमें परिणमित होती है। आत्मा उसे परिणमन कराता नहीं है। वाणी वह तो अनंत जड़ रजकणका पिंड है उसे आत्मा किस प्रकारसे परिणमित करा सके ? पुद्गलके परमाणु वाणीरूप परिणमन हेतु उन्मुख होता है उसे आत्मा रोक सकता नहीं। यह तो भाई ! जिसे परके अभिमानको छोड़कर स्वमें समाहित होना हो उसके लिये यह बात है। मैं समझाता हूँ इसलिये दूसरा समझता है इस बातमें कोई माल नहीं है।

''जिस द्रव्यका जिस समय जो पर्यायका स्वकाल है उसी समय वह द्रव्य उस

जब होय विवादं सिद्ध दृष्टांत चलता,
वह करता सिद्धी जब अनेकांत पलता;

पर्यायकी उन्मुखतासे वर्तता है'' इसमें उपादान-निश्चय और क्रमबद्ध तीनों आ जाता है। उपादानके साथ निमित्त और निश्चयके साथ व्यवहार होता है लेकिन वह कुछ भी कार्य करता नहीं है।

श्रोता : गुरुसे शिष्य समझता नहीं तो फिर गुरुका माहात्म्य क्यों ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुका माहात्म्य उसमें ही है। सत् सत्से होता है ऐसा स्वीकार करे तभी शिष्यको गुरुके प्रति बहुमान आता है वह व्यवहार है। निश्चयसे स्वयंकी महिमा है और व्यवहारसे गुरुकी महिमा है।

जीव और पुद्गल स्वयं गति करे तभी धर्मद्रव्य निमित्त होता है। यदि धर्मद्रव्य गति कराता हो तो आकाशको भी धर्मद्रव्य गति कराये लेकिन ऐसा कदापि होता नहीं है। जीव और पुद्गलमें गति करनेकी शक्ति है, अतः गति करते हैं। उसमें धर्मद्रव्यको हस्तावलम्ब तुल्य देखकर गतिमें सहायक कहा है इसलिये जीव-पुद्गलकी गतिके कालमें धर्मद्रव्यको सहकारी-कारण कहा है, वैसे शिष्य स्वयं समझनेके लिये उन्मुख है तभी समझानेवाले गुरुको सहकारी कारण निमित्त कहा जाता है। निश्चयसे स्वयंका आत्मा ही स्वयंका गुरु है लेकिन व्यवहारसे गुरु निमित्त है इसलिये गुरुकी सेवा-सुश्रूषा करनी चाहिये। शिष्यको अपने मिथ्याभाव पलट कर धर्म प्रकट होता है। तब देव-शास्त्र-गुरु, भगवानकी प्रतिमा, साधर्मी आदि जो कोई भी निमित्त हो उसके प्रति शिष्यको विनय-भक्ति-सेवा आदिके भाव आते है।

लोगोंको ऐसा लगता है कि हम प्रत्यक्ष देखते है कि अग्नि हो तो पानी ऊष्ण होता है। बर्फ डाले तो पानी ठंडा होता है, बाई हो तभी रोटी होती है, गुरु हो तभी ज्ञान होता है और आप कहते हो कि निमित्तसे कुछ भी होता नहीं है। लेकिन भाई ! तेरी दृष्टि निमित्ताधीन है अर्थात् तुझे ऐसा लगता है। वास्तवमें तो, द्रव्यके स्वयंके उपादानके कालमें ही पर्याय होती है और व्ययके कालमें व्यय होता है तभी अनुकूल निमित्त हाजिर होता है, वह कहनेयोग्य निमित्तमात्र ही है, उस वस्तुमें कोई बदलाव कर सकता नहीं है। यह एक नियम यदि समझमें आ जाय तो ज्ञानमें स्वतंत्रताकी घोषणा हो जाय।

अब, शिष्यको यह बात समझमें आ गई कि परसे कार्य होता नहीं, मेरा कार्य मुझसे होता है, तो अब प्रश्न होता है कि हमें अभ्यास किस प्रकार करना ? आत्माका ध्यान किस प्रकार करना ? जो अभ्यास करनेकी पर्यायका इच्छुक है ऐसे शिष्यको ऐसे प्रश्न होते है

(शेष देखे पृष्ठ १४ पर)

अेकांत मतोंमें साधना होय नाहीं,
तव मत है साचा, सर्व सधता तहां ही ।५४।

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

स्वानुभवके समय ज्ञानका अतीन्द्रियपना

''...इसीलिये निर्विकल्प अनुभवको अतीन्द्रिय कहते हैं; क्योंकि इन्द्रियोंका धर्म तो यह है कि स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णको जानें; वह यहाँ नहीं है; और मनका धर्म यह है कि अनेक विकल्प करे, वह भी यहाँ नहीं है। इसलिये, जो ज्ञान इन्द्रिय तथा मन द्वारा प्रवर्तता था वही ज्ञान जब अनुभवमें प्रवर्तता है तब उसको अतीन्द्रिय कहते हैं।''

देखो, स्वानुभवमें मति-श्रुतज्ञानको अतीन्द्रिय कहा। स्वानुभवके समय मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों स्वरूपसन्मुख हुए हैं अतः इन्द्रियातीत हुए हैं, इन्द्रियका व मनका अवलम्बन इनमें नहीं है, इसलिये इस अनुभवको अतीन्द्रिय कहते हैं। मनका अवलम्बन नहीं तब रागका भी अवलम्बन नहीं यह बात इसमें आ ही गई। रागमें तो मनका अवलम्बन है। रागके (व्यवहारके) अवलम्बनसे निश्चय स्वानुभव प्राप्त हो जायेगा—ऐसा जो मानता है उसे मनके अवलम्बनसे रहित अतीन्द्रिय स्वानुभव कभी नहीं होगा, क्योंकि वह तो रागका व मनका अवलम्बन छोड़के आगे बढ़ता ही नहीं; रागातीत व मनातीत अनुभवकी उसे खबर ही नहीं।

अहा, यह स्वसन्मुख मति-श्रुतज्ञानकी महिमाके बारेमें क्या कहें? वह तो केवलज्ञानका साधक है। सम्यग्दृष्टिके (चौथे गुणस्थानवालेके भी) स्वानुभवको अतीन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि उसमें इन्द्रियका या मनका व्यापार नहीं है। इन्द्रिय तथा मनका व्यापार तो परकी ओर होता है, स्वरूपमें उपयोगके समय, पर तरफका व्यापार नहीं रहता। इन्द्रिय तथा मनका ऐसा स्वभाव नहीं कि स्वानुभवमें मददरूप होवे। जितना स्वानुभव है उतना इन्द्रिय तथा मनका अवलम्बन छूट गया है और ज्ञान अतीन्द्रिय हुआ है। यदि इतना अतीन्द्रियपना न हो और इन्द्रियका अवलम्बन ही रहा करे तब तो आत्मा इन्द्रियज्ञानका ही विषय हो जाय!—परन्तु ऐसा कभी नहीं होता। प्रवचनसारमें स्पष्ट कहा है कि आत्मा 'अलिंगग्राह्य' है, लिंगसे अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा उसका ग्रहण नहीं होता, इन्द्रियोंके द्वारा वह

एकांत मतों के चूर्ण करता तिहारे,
न्यायमई बाणं मोहरिपु जिन संहारे;

नहीं जाना जाता। अतएव स्वानुभवसे आत्माको जाननेवाला ज्ञान अतीन्द्रिय है।

—मति-श्रुतज्ञान भी अतीन्द्रिय !!

—हाँ, भाई ! मति-श्रुतज्ञानकी ही तो यह बात है; यह कोई केवलज्ञानकी तो बात नहीं। बारहवें गुणस्थान तक स्वानुभवका कार्य तो मति-श्रुतज्ञानसे हो जाता है। किसीको अवधि-मनःपर्ययज्ञान खिले हों तो भी निर्विकल्पध्यानके समयमें उनका उपयोग नहीं होता। मति-श्रुतज्ञान स्वानुभवके समयमें स्वमें ऐसे एकाकार हो जाते हैं कि मैं ज्ञाता हूँ और शुद्धात्मा मेरा स्वज्ञेय है ऐसे ज्ञाता-ज्ञेयके भेदके विचार भी वहाँ नहीं रहते, वहाँ तो द्रव्य-पर्याय (ध्येय व ध्याता अथवा ज्ञेय व ज्ञान) एकरस होकर अनुभवमें आता है। इस अनुभवकी महिमा वाणीसे या विकल्पसे पार है; अपने स्वसंवेदनके बिना अकेली वाणीसे या विकल्पसे इसका सच्चा ख्याल नहीं आता। इसलिये समयसारके प्रारम्भमें आचार्यदेवने खास भलामन की है कि मैं अपने निज वैभवसे जो शुद्धात्मा दर्शाता हूँ उसे तुम अपने स्वानुभवसे प्रमाण करना।

अहा, अध्यात्मकी कैसी अच्छी बात है? इसकी विचारधारा, इसका निर्णय, व इसका स्वानुभव, यही करनेका है। इसके लिये सतत अभ्यास चाहिये। सत्समागममें श्रवण कर, मनन कर, एकान्तमें स्थिरचित्तसे इसका अंतरंग अभ्यास करना चाहिये। इस मनुष्यभवमें सच्चा करनेका यही है, और अभी अच्छा अवसर मिला है–सब अवसर आ चुके हैं? इसप्रकार मति-श्रुतज्ञानके द्वारा जो स्वानुभव होता है उसका अतीन्द्रियपना दिखाया; फिर भी ज्ञानमेंसे अभी मनका अवलम्बन सर्वथा नहीं छूटा, यह भी दिखाते हैं। (क्रमशः) ❋

(पृष्ठ १२ का शेष भाग) (इष्टोपदेश)

कि मेरा पूर्ण आनंदरूप भगवान आत्माको पहिचानकर उसमें एकाग्र होनेके लिये अभ्यास क्या करना? उसका उपाय क्या है? उसके लिये कोई नियम है कि नहीं? उसके लिये स्थान कैसा चाहिये? आदि प्रश्नोंका होना गाथा द्वारा मुनिराज उत्तर देते है।

प्रथम तो 'अभ्यास'की व्याख्या की है कि बारम्बार प्रवृत्ति करना उसको अभ्यास कहते है। यह व्याख्या प्रसिद्ध है। उस अनुसार बारम्बार आत्माकी ओरका अभ्यास करना उसे आत्माका अभ्यास कहते है। बाह्यकी लाख बात छोड़कर एक ही बात कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ–ऐसा ज्ञायकका अभ्यास होना। (क्रमशः) ❋

तम ही तीर्थंकर केवल ऐश्वर्य धारी,
तातें तेरी ही भक्ति करनी विचारी।५५।

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ६)

अरहंत देवका सच्चा सेवक कैसा होता है ?

कोई कहता है कि हम अरहंत भगवानको देवके रूपमें मानते हैं; कृपया यह बतलाईये कि अरहंत भगवानको देवके रूपमें स्वीकार करनेका यथार्थ लक्षण क्या है ? उसके उत्तरमें कहते हैं कि अरहंत देवका सच्चा सेवक होनेके लिए सर्व प्रथम विपरीत आग्रहका त्याग और यथार्थ देव-गुरुके प्रति सच्ची प्रीति–भक्ति होनी चाहिये। तब यथार्थ व्यवहारशुद्धि हुई कहलायेगी, यह बात सभीके लिए लागु होती है।

सच्चे वीतराग देव, उनके द्वारा कहे गये सच्चे अनेकान्त शास्त्र और निर्ग्रंथ गुरुको पहिचान कर उनके प्रति जबतक प्रीति उत्पन्न नहीं होती तबतक व्यवहारशुद्धि भी नहीं होती; उसके यथार्थ निमित्त भी नहीं हैं।

प्रश्न :—अरहंत वीतराग परमात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर :—जो एक समयमें तीन काल और तीन लोकको जानते है और जिसके रत्नत्रयकी परिपूर्ण शुद्धता प्रकाशित हो गई है वह वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देव है। यदि कोई ऐसे अरहंतदेवके स्वरूपको बाह्य लक्षणों द्वारा भी जाने बिना माने और कुदेवादिको न माने, तो भी उसके बाह्यशुद्धि हुई नहीं कही जा सकती, क्योंकि जिस देवको वह मानता है उस देवके स्वरूपको तो वह जानता नहीं है।

प्रश्न :—यह कब कहा जायगा कि सच्चे देवकी यथार्थ मान्यता हो गई है ?

उत्तर :—पहले गृहीतमिथ्यात्वदशामें जिस प्रकार अन्य कुदेवादिके लिए तन, मन, धन इत्यादि लगाये रहता था, यदि वीतराग देव-शास्त्र-गुरुके लिए उससे भी अधिक तन-मन-धन अर्पित करनेका उल्लास जागृत नहीं होता तो समझना चाहिए कि वह 'ठग भगत' है। वास्तवमें वह वीतरागका भक्त नहीं है, उसका गृहीतमिथ्यात्व नहीं छूट पाया। अरहंतदेवकी शरणके बिना आत्माको नहीं पहचाना जा सकता।

जिसने शुद्ध आत्मस्वरूपका भान करके स्थिरता द्वारा चार घातिया कर्मोंका नाश करके सर्वज्ञता प्राप्त कर ली है ऐसे अरहंतदेवका भक्त कब कहा जा सकता है ? इसकी यह बात है। जबतक बाह्य लक्षणोंसे सच्चे देवको न पहिचाने और कुदेवादिकी मान्यता

श्री वासुपूज्य जिन-स्तुति	
	तुम्हीं कल्याण पंचमें पूजनीक देव हो,
	शक्र राज पूजनीक वासुपूज्य देव हो;

छोड़कर सच्चे देव-गुरुके प्रति भक्ति और उल्लास न आये तबतक व्यवहारशुद्धि भी नहीं होती और वह व्यवहारसे भी सच्चे देवका भक्त नहीं है–जैन नहीं है।

प्रश्न—आप बारम्बार कहते हैं कि कोई परद्रव्यका कुछ नहीं कर सकता, मात्र निमित्त होता है तब फिर यदि लड़केका पुण्य हो और हम उसके लिए धनादि संग्रह करनेमें निमित्त हों तो इसमें गृहीतमिथ्यात्व कहाँसे आ गया ?

उत्तर—भैया ! देव-गुरुकी अपेक्षा यदि स्त्री, कुटुम्ब आदिके प्रति अधिक राग हो जाय तो उसके धर्मका प्रेम नहीं किन्तु संसारका प्रेम है इसलिए उसको गृहीतमिथ्यात्व ही है। स्त्री कुटुम्बके प्रति राग होता है तब कहता है कि मैं निमित्तमात्र था तब फिर भगवानकी भक्ति और शास्त्रप्रभावना आदिमें निमित्त क्यों नहीं हुआ ? देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावना इत्यादिके कार्योंमें कंजूसी करता है, वहाँ उल्लास नहीं होता और लड़केकी शादीके समय कंजूसी नहीं करता, लड़केके विवाहके समय जागरण करता है, चिल्लाते चिल्लाते गला बैठ जाता है। चाहे जो हो किन्तु उल्लासमें कमी नही आने देता; तब तूं ही सोच कि तूं किसका भक्त है ? देव-गुरुकी पहिचानके बिना जीव संसारमें ही रुलेगा। अरहंतदेवकी सच्ची पहिचान और भक्तिके प्रकट हुए बिना जीव संसार समुद्रमें मगरके मुखमें पड़ा है। जब घरमें कोई बुड्ढा–बुड्ढी मर जाते हैं तब जगतमें अपनी प्रतिष्ठाके खातिर कारज (-मृत्यु भोज) करता है–लोगोंको भोजन कराता है, उसमें खूब धन खर्च करता है, संसारमें अपनी नाक (प्रतिष्ठा) रखनेके लिए 'नक्कूखाँ' सब कुछ करता है किन्तु जब वीतराग भगवानकी भक्ति पूजा, धर्म प्रभावना, शास्त्रप्रचार इत्यादिकी बात आती है तब कहता है कि उसमें आरंभ होता है, लेकिन भाई ! पुण्य-पाप अन्दरके शुभाशुभ भाव पर निर्भर होता है कि बाह्य क्रिया पर ? क्या अपने स्त्री पुत्रादिके प्रति राग करनेमें तुझे पाप नहीं लगता ? स्त्री पुत्रादिका पोषण करनेका भाव तो विषैले सर्पको पोषण करनेके बराबर है फिर भी तुझे उनमें उल्लास आता है। और धर्मके पोषणके पुण्यभावमें तुझे उल्लास नहीं आता, तो तूं पापमें ही मग्न है। जो धर्मात्मा होते हैं वे देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावना भक्ति इत्यादि कार्योमें उल्लासके मारे हृदयसे उछल जाते हैं कि अहो ! मेरा अवतार धन्य हो गया, मेरे अन्तरमें त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवान विराजित हैं, मैं सर्वज्ञदेवका भक्त हुआ, देव-शास्त्र-गुरुका दासानुदास हुआ यह मेरा बड़ा भाग्य है। इस प्रकार अपने अंतरंगमें देव-गुरुकी स्थापना करता है और जब अपने आत्मदेव अपनेमें स्थापित कर लेता है तो

मैं भी अल्पधी मुनीन्द्र पूज आपकी करूं;
भानुके प्रपूज काज दीपकी शिखा धरूं।५६।

जन्म-मरणका नाश ही हो जाता है।

मिथ्यात्वकी भूमिकामें सच्चा व्रत, तप नहीं होता, किन्तु वीतरागदेव, गुरु, धर्मकी पहिचान और उनके प्रति बहुमानका शुभराग होता है, वह सुबहकी संध्याके समान है और इसके बिना संसार सम्बन्धी दया, दान, सेवा इत्यादिका शुभराग सायंकालीन संध्याके समान है, जिसके पीछे अंधेरा है। अर्थात् जिसके पीछे प्रकाश होगा वह शुभभाव अल्पकालमें ही अस्त हो जायगा; और वीतरागदेव-गुरु-धर्मके प्रति जो शुभराग है वह प्रातःकालीन संध्याके समान है। उसके पीछे (अर्थात् स्वभावमें उस शुभरागका भी जब इन्कार करता है तब) शुद्धताका प्रकाश होता है। यहाँ लौकिक शुभरागकी बात नहीं है किन्तु भगवानके ऊपर होनेवाले शुभरागकी बात है, वह शुभराग भी मैं नहीं हूँ इस प्रकारका निर्णय हुए बिना जन्म-मरणका अंत नहीं होता। किन्तु साथ ही पहले देव-गुरुके प्रति शुभराग और भक्ति इत्यादिके हुए बिना भी जन्म-मरण दूर नहीं होता।

प्रथम गृहीतमिथ्यात्वके समय जब कुदेव-कुगुरुको मानता था और उनके लिए तन-मन-धन लगाये रहता था उस समय कंजूसी नहीं करता था, वैसे अब सच्चे देव-गुरुको पहिचान कर उनके लिए पहलेसे भी अधिक उत्साहसे तन-मन-धन व्यय करता है तब उसके गृहीतमिथ्यात्वका अर्थात् स्थूल पापका त्याग होता है।

प्रश्न—आपने कहा कि 'पहले कुदेवादिके लिए जो खर्च करते थे उससे अधिक सुदेवादिके लिए खर्च करना चाहिए,' किन्तु यदि हमने आज तक कुदेवादिके लिए भी कुछ नहीं किया हो और अब उसीप्रकार सुदेवादिके लिए भी कुछ न करे तो हमारे लिए गृहीतमिथ्यात्वसे छुट्टी मिल जायगी या नहीं?

उत्तर—पहले तुमने खर्च नहीं किया था सो ठीक, किन्तु अब तुम वीतरागदेवको मानते हो या नहीं? यदि मानते हो तो कुदेवादिको माननेवाले अन्य लोग कुदेवादिके लिए जितना उत्साहपूर्वक खर्च करते हैं यदि तुम सुदेवादिके लिए उससे अधिक उत्साहपूर्वक खर्च नहीं करोगे तो कहना होगा कि तुम्हारा गृहीतमिथ्यात्व नहीं छूटा है। यदि कोई अच्छा अन्य धर्मी होता है तो वह भी अपनी आमदनीका अमुक भाग अपने माने हुए देव इत्यादिके लिए अलग निकाल लेता है और तुझे अपने वीतरागदेव-गुरु-धर्मके लिए उल्लास नहीं होता और उनके लिए तन-मन-धन अर्पित नहीं करता तब तो तू उनसे भी गया बीता है। तुझे तेरे धर्मका उत्साह नहीं; जैनधर्मकी महिमा तूने जानी नहीं। (क्रमशः) ✻

वीतराग हो तुम्हें न हर्ष भक्ति कर सके,
वीतद्वेष हो तुम्हीं, न क्रोध शत्रु हो सके;

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

इस अनुभवप्रकाश ग्रन्थमें मिश्रधर्मका अधिकार चलता है। आत्मामें जिस क्षण अनुभव अर्थात् धर्म प्रकट होता है उसी क्षण पूर्ण अनुभव नहीं होता। पूर्ण अनुभव तो केवलज्ञानमें होता है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी प्रतीति और अनुभव वह धर्म है। चौथे गुणस्थानसे लेकर जितनी शुद्ध दशा हुई उतना धर्म है और जितनी विकारी दशा रहे वह अधर्म है। जब तक पूर्ण दशा न हो तब तक दोनों भाव होते हैं उसे मिश्रदशा कहते हैं।

अब, इसमें प्रश्न उठाया कि :—आप कहते हैं कि सम्यग्दर्शनरूपी धर्म प्रकट होता है उसमें क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, वह क्षायिक सम्यक् गुण सर्वथा शुद्ध हुआ है या नहीं? यदि उसे सर्वथा सम्यक्त्व हुआ हो तो उसे सिद्ध कहना पड़ेगा, क्योंकि एक गुण सर्वथा सम्यक् हुआ होता तो सर्व गुण सम्यक् होने चाहिए, क्योंकि एक गुण सर्व गुणोंमें व्याप्त है, इसलिए क्षायिक सम्यग्दृष्टिको मिश्रपना नहीं रहता है।

क्षायिक सम्यक्त्व हुआ उस समय वह गुण सर्वथा सम्यक् हुआ हो तो अन्य गुण भी सर्वथा सम्यक् होने चाहिए, परन्तु ऐसा तो नहीं है, क्योंकि सम्यक् ज्ञान पूर्ण नहीं हुआ है। एकदेश ज्ञान है इसलिए क्षायिकको सर्वथा सम्यक्पना मत कहो। उसमें किंचित् कचास रह गई है—ऐसा कहना पड़ेगा। अब उसे कचाश कहोगे अर्थात् किंचित् शुद्ध हुआ है—ऐसा कहोगे तो सम्यक् गुणको घातक मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधीका कर्म उसके होना चाहिए।

अब, क्षायिक सम्यग्दृष्टिको मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी कर्मका निमित्त तो होता नहीं है। यहाँ मिश्र अधिकार है, इसलिए यह बात ली है कि–सम्यक्गुण क्षायिक सम्यग्दृष्टिको पूर्ण है या अधूरा है—ऐसा प्रश्न किया है। उससे कहते हैं कि सम्यक्गुण वहाँ पूर्ण भी है और अपूर्ण भी है। उसे विवक्षा वश समझना पड़ेगा। उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

वह आवरण तो गया परन्तु सर्व गुण सर्वथा सम्यक् नहीं हुए हैं। आवरण जानेसे सर्व गुण सर्वथा सम्यक् नहीं हुए, इसलिए परम सम्यक् नहीं है। यहाँ कहते हैं कि क्षायिक

सार गुण तथापि हम कहें महान भावसे,
हो पवित्र चित्त हम हटें मलीन भावसे।५७।

सम्यक्त्व होनेसे अन्य गुण तो परम सम्यक् नहीं है, परन्तु जो क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट हुआ वह भी परम सम्यक्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्वरूप पर्यायमें अशुद्धता या अपूर्णता नहीं रही है परन्तु अन्य गुण सर्वथा शुद्ध नहीं हुए हैं, इसलिए क्षायिकको भी परम सम्यक्त्व नहीं कहते। जब सर्वगुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक्रूप हो तब परम सम्यक्त्व ऐसा नाम प्राप्त करता है। विवक्षा प्रमाणसे कथन प्रमाण है। सम्यग्दर्शन हुआ इसलिए प्रतिमा लेना ही चाहिए—ऐसा कोई कहे तो वह मिश्रधर्मको समझता नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिकसम्यक्त्व हुआ हो तथापि गुण निर्मल नहीं होते, इसलिए परम सम्यक्त्व नहीं है; परन्तु वह परम सम्यक्त्व नहीं है इसलिए क्षायिक सम्यग्दर्शनमें कोई मलिनता, अशुद्धता या न्यूनता है—ऐसा नहीं है। क्षायिक सम्यग्दर्शन तो निर्मल हुआ सो हुआ। आगे गुणस्थान चढ़ने पर क्षायिक सम्यक्त्व विशेष निर्मल होता है ऐसा नहीं है, क्योंकि उसमें कोई अशुद्धता नहीं रही है कि शुद्धतामें वृद्धि हो, परन्तु अन्य गुण शुद्ध नहीं हुए हैं, इसलिए वह परम सम्यक्त्व नाम नहीं पाता—ऐसा कहते हैं।

किसीको सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रकट होता है और किसीको सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् लाखों–करोड़ों वर्ष तक पाँचवें गुणस्थानकी दशा भी नहीं होती, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दर्शन हुआ इसलिए कहीं सर्वगुण शुद्ध होते हैं—ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टिको शक्तिके प्रमाणमें तप–त्यागादि होते हैं। द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव देखकर सम्यग्दृष्टिको त्याग होता है। ऐसा वीतरागका मार्ग है।

क्षायिक सम्यग्दर्शनमें आवरण नहीं रहा है, इसलिए वह पूर्ण निर्मल है, तथापि चारित्रगुण पूर्ण निर्मल नहीं है, इसलिए परम सम्यक्त्व नहीं है, —ऐसा कहा है। धर्मी अपने परिणाम देखकर प्रतिज्ञा लेता है, परन्तु हठपूर्वक प्रतिज्ञा लेना ऐसा वीतरागका मार्ग नहीं है। सम्यग्दृष्टि समझता है कि मेरे परिणाममें शिथिलता है, राग है। अंतरमें दृढ़ता आए अथवा प्राण छूट जाए परन्तु प्रतिज्ञा न टूटे ऐसे परिणाम होने चाहिए।

दर्शनगुणमें क्षायिक सम्यग्दर्शन होनेसे कोई अपूर्णता नहीं रही है, तथापि वहाँ सर्वगुण पूर्ण नहीं हुए हैं, इसलिए मिश्रधर्म है—ऐसा कहा है। बारहवें गुणस्थान तक मिश्रदशा होती है, इसलिए वहाँ धर्म पूर्ण नहीं हुआ है। सम्यग्दर्शन पूर्ण है परन्तु अन्य गुण पूर्ण नहीं हुए हैं, इसलिए मिश्रधर्म कहा है। (क्रमशः) ✻

पूजनीक देव आप पूजते सुचावसे,
बांधते महान पुण्य जन विशुद्ध भावसे;

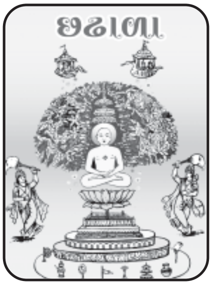

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

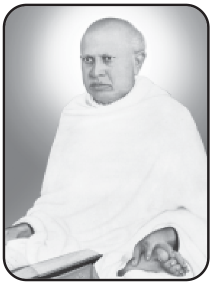

(तीसरी ढाल, गाथा-१)

आत्माके हितरूप मोक्षमार्गका वर्णन
हे जीव ! तू मोक्षपथमें चल

जिनके ज्ञानादि गुण पूर्णरूपसे विकसित हो गये है और रागादि दोषोंका सर्वथा अभाव हुआ है ऐसे सर्वज्ञ वीतराग वे सच्चे देव है, भेदज्ञान द्वारा ऐसी दशाकी साधना करनेवाले शुद्धोपयोगी संत वे सच्चे गुरु है और ऐसे देव-गुरु द्वारा कहा हुआ यह शास्त्र है;—सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें ऐसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी ही श्रद्धा होती है, जो व्यवहार है; इससे विपरीत देव-गुरु-शास्त्रकी मान्यता व्यवहारमें भी होती नहीं है। देव-गुरु-शास्त्रके स्वरूपको जो मिथ्या मानते है उसे तो निश्चय या व्यवहार कोई भी सच्चा नहीं है। सम्यग्दर्शनके सहकारीपने सत्य देव-गुरु-शास्त्रकी ओर ही विकल्प होता है, विरुद्ध नहीं होता है अर्थात् कुदेवादिकी मान्यताके विकल्प नहीं होते है।–मोक्षमार्गमें निश्चय-व्यवहारकी ऐसी स्थिति है; किन्तु उसमें मोक्षमार्ग तो शुद्धात्माके आश्रयसे उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन ही है, उसके साथका विकल्प वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। भाई ! तेरे भवमें मोक्षमार्गका यथार्थ कारण क्या है उसकी तू पहिचान कर।

एक तो सम्यग्दर्शनकी तैयारीवाले जीवको सम्यग्दर्शन होनेसे पूर्व निश्चयके लक्षपूर्वक जो विकल्प था उसे सम्यग्दर्शनका कारण कहा है वह व्यवहार है; और दूसरे प्रकारमें, सम्यग्दर्शनके साथ सहकारीरूपमें विद्यमान देव-गुरु-शास्त्रकी ओरके विकल्पको भी सम्यग्दर्शन कहा है वह व्यवहार है; यह दोनोंमें विकल्पसे पार शुद्धात्माकी दृष्टि ही यथार्थ सम्यग्दर्शन है, वह निश्चय है, वह सत्य है, वह मोक्षका सच्चा कारण है।

वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र तो आत्माका सर्वज्ञस्वभाव सिद्ध करते है; सर्वज्ञता और वीतरागता वह ही जिसका तात्पर्य है; और वह तात्पर्य निजस्वरूपके श्रद्धा-ज्ञान-आचरण द्वारा ही सिद्ध होता है, परसन्मुखता द्वारा (अर्थात् कि व्यवहार द्वारा) उसकी साधना होती नहीं है। अर्थात् व्यवहारके आश्रयसे मोक्षमार्ग माने वे जीव वीतरागशासनमें नहीं, यथार्थ मोक्षमार्ग

अल्प अघ न दोषकर यथा न विष कणा करे,
शीत शुचि समुद्र नित्य शुद्ध ही रहा करे। ५८

उसने जाना नहीं है। ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुमार्गकी श्रद्धाका विकल्प वह सम्यग्दर्शनका कारण तो नहीं, किन्तु सम्यग्दर्शनके सहकारीपने भी वह होता नहीं है। वह तो सम्यग्दर्शनसे विरुद्ध है। सम्यग्दर्शनके सहकारीपने होता है ऐसे सच्चे देव-गुरुकी श्रद्धाका विकल्प भी मोक्षका सत्य कारण नहीं है। सत्य कारण तो भूतार्थस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न शुद्ध आत्माकी श्रद्धा ही है; जिसे 'सत्यार्थ' कहा है। निश्चय कहो या सत्यार्थ कहो; वह मुख्य है; और अन्य व्यवहार है वह गौण है, जो सत्यार्थ नहीं है लेकिन आरोप है—उपचार है।

आत्मा जैसे सर्वज्ञस्वभाव है वैसे ही अतीन्द्रिय आनंदस्वभाव है। आत्मा स्वयं ही आनंदरूप है, रागमें उसका आनंद नहीं है, अर्थात् रागके आश्रयसे आनंद होता नहीं है और आत्माका आनंदस्वभाव कोई देव-गुरु-शास्त्र आदि किसीके पास नहीं है, अर्थात् अन्यके आश्रयसे वह प्रकट होता नहीं है। स्वयं ही जिसमें आनंद भरा हो उसे एकतासे आनंदका अनुभव होता है। स्वयंका आनंद स्वयंमें ही भरा है, आनंदरूप स्वयं ही है, और स्वयंकी ओर दृष्टि करने पर उसका अनुभव होता है। जैसे ज्ञानस्वभाव आत्मामें है इसलिये आत्माके आश्रयसे सर्वज्ञता होती है, उसमें अन्य किसीका आश्रय नहीं है; राग या देहके आश्रयसे सर्वज्ञपना होता नहीं है; क्योंकि उसमें वह नहीं है। जैसे अतीन्द्रिय आनंदका पिंड आत्मा है, उसके आनंदमें अन्य किसीका आश्रय नहीं है; राग या देहके आश्रयसे आनंद होता नहीं है क्योंकि उसमें आनंद नहीं है। ज्ञान और आनंद जिसका स्वभाव है उसके ही आश्रयसे वह प्रकट होता है; किन्तु जिसके स्वभावमें ज्ञान और आनंद नहीं है उसके आश्रयसे वह प्रकट होता नहीं है।

मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनंद; उसके कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह भी अतीन्द्रिय आनंदका ही अंश है। आत्माके आश्रयसे वह प्रकट होता है। आनंदकी जातिका वह अंश ही पूर्ण आनंदका कारण होता है। राग कोई आत्माका अंश नहीं है अर्थात् वह आनंदका कारण भी होता नहीं है।—तो उसे मोक्षमार्ग कौन माने ? जिसमें अंशमात्र भी आनंद नहीं है लेकिन आकुलता है ऐसे रागभाव पूर्ण आनंदरूप मोक्षका कारण कैसे हो ? निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—यह तीनों आनंदरूप है, राग बिनाका है और आत्माके ही आधीन है, वह ही पूर्ण आनंदरूप मोक्षका कारण है। सुखरूप पर्याय पूर्ण सुखकी साधना करती है, लेकिन दुःखरूप पर्याय सुखकी साधना कर सकती नहीं है। शुभराग द्वारा वीतरागमार्गकी साधना नहीं होती। रागके अभावरूप अंश वीतरागता द्वारा ही मोक्षमार्गकी साधना होती है।

वस्तु बाह्य है निमित्त पुण्य पाप भावका,
है सहाय मूलभूत अन्तरंग भावका;

पुण्य-पापके रागमें आनंद कहाँ है—कि उसके आश्रयसे वह प्रकट हो ? आनंद कहो, मोक्षमार्ग कहो; वह आनंदका कोई अंश रागमें नहीं है, और आनंद रागमें नहीं है, अर्थात् वे एकदूसरेका कारण भी नहीं है। इस प्रकार राग वह मोक्षमार्ग नहीं है अर्थात् व्यवहारके आश्रयसे मोक्षमार्ग नहीं है। राग बिनाका जो शुद्धस्वभाव उसके आश्रयसे ही मोक्षमार्ग है–यह जैनधर्मका सिद्धांत है।

जैनसिद्धांतका तथ्य यह है कि, आत्मा स्वयं ज्ञान-आनंदसे परिपूर्ण भगवान है–वह अनुभवमें आये ऐसे अनुभवको ही जैनशासन कहा है। ज्ञान–आनंदस्वरूपमें दृष्टि करके एकाग्र होने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट होता है; और लीनता होने पर मोक्षदशा होती है। अंश और अंशी एक जातिके होते है, अंशीका अंश उसी जातिका होता है। यथार्थ कारण एक समान ही होते है; अंश स्वयं अपनी जातिके अंशके आश्रयसे ही प्रकट होते है, लेकिन असमानजातिके आश्रयसे प्रकट नहीं होते है। रागके आ श्रयसे वह प्रकट नहीं होता। रागके सेवन द्वारा तो रागका कार्य प्रकट होता है, लेकिन ज्ञान द्वारा प्रकट नहीं होता सत्यज्ञानका अंश ज्ञानके आश्रयसे ही प्रकट होता है। अंशीके साथ एकता करके प्रकट हुआ अंश वह सत्य अंश है। (पूर्णताके लक्षसे प्रारंभ वह ही यथार्थ प्रारंभ है।) पूर्णताका लक्ष कहो या सम्यग्दर्शन कहो, जिससे मोक्षमार्गका प्रारम्भ है। आत्मा पूर्ण आनंदस्वभाव है, उसके अनुभवसे ही आनंद प्रकट होता है। रागके आश्रयसे आनंद अनुभव कदापि होता नहीं है। क्योंकि आनंद वह कोई रागका अंश नहीं है। इस प्रकार ज्ञान और श्रद्धा भी रागके आश्रयसे होते नहीं है, क्योंकि वह ज्ञानादि कोई रागके अंश नहीं है। रागके आश्रयसे राग प्रकट होता है, मोक्षमार्ग प्रकट होता नहीं है।

देखो, यह सत्यार्थ मोक्षमार्ग ! यथार्थ मोक्षमार्ग राग बिनाका है। आत्माके ज्ञान और आनंद वह राग बिनाके है। ज्ञान और आनंद वह आत्माके मुख्य गुण है। 'चिदानंदाय नमः' आदि मंत्र आत्माके स्वभावको दर्शाते है, जिसमें श्रद्धा-वीर्य आदि अनंत गुण समाहित हो जाते है। जिस गुणसे देखो वह गुणस्वरूप संपूर्ण आत्मा दिखाई देता है। आनंदकी मुख्यतासे देखो तो संपूर्ण आत्मा आनंद स्वरूप है, ज्ञानकी मुख्यतासे देखो तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है; इसी प्रकार श्रद्धा आदि अनंत गुणस्वरूप पूर्ण आत्मा है; उसके लक्षसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद आदि प्रकट होता है। आत्माके लक्षसे राग प्रकट होता नहीं है, उसका तो अभाव

(शेष देखे पृष्ठ ३१ पर)

वर्तता स्वभावमें उसे सहायकार है,
मात्र अन्तरंग हेतु कर्म बंधकार है।५९।

जीवमें होनेवाले पांच भावोंका विचार

औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक और पारिणामिकभाव यह पाँच भावों हैं, उसमें औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक यह चार भावों पर्यायरूप है, और शुद्धपारिणामिकभाव द्रव्यरूप है।—ऐसे स्वभावको देखनेवाला ज्ञान वह मोक्षमार्ग है।

औपशमिकभाव : अनादिका अज्ञानी जीव सर्वप्रथम जब स्वयंके स्वभावका भान करता है तब चौथे गुणस्थानमें उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है और इस औपशमिकभावसे धर्मका प्रारम्भ होता है। बादमें चारित्रमें उपशमभाव, उपशमश्रेणीके समय मुनिदशा होती है। उपशमभाव वह निर्मलभाव है। उसमें मोहका वर्तमान उदय नहीं है, और उसका सर्वथा क्षय भी हो गया नहीं है तदपि जैसे शांत जलमें नीचे कीचड़ बैठ गया हो वैसे सत्तामें कर्म विद्यमान है। जीवकी ऐसी निर्मल पर्यायको औपशमिकभाव कहते है।

क्षायोपशमिकभाव : इस भावमें आंशिक विकास और आंशिक आवरण होता है, ज्ञानादिका सामान्य क्षयोपशमभाव तो सभी छद्मस्थ जीवोंको अनादिसे होता है। लेकिन यहाँ मोक्षके कारणरूप क्षयोपशमभाव बताना है अर्थात् यहाँ सम्यग्दर्शनपूर्वकका क्षयोपशमभाव लेना।

क्षायिकभाव : आत्माके गुणकी संपूर्ण शुद्धदशा प्रकट हो और कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाय—ऐसी दशा वह क्षायिकभाव है।

यह तीनों भाव निर्मलपर्यायरूप है, वे अनादिसे नहीं होते है लेकिन आत्माकी पहिचानपूर्वक नवीन प्रकट होते हैं।

औदयिकभाव : जीवका विकारीभाव, जिसमें कर्मका उदय निमित्त होता है। अनादिसे सभी संसारीजीवोंको औदयिकभाव होता है। मोक्षदशा होने पर उसका सर्वथा अभाव होता है। औदयिकभाव शुभ-अशुभ अनेक प्रकारके होते है, वे कोई भी भाव मोक्षका कारण होते नहीं है। धर्मी जीव स्वयंके ज्ञानको औदयिकभावोंसे भिन्नताका अनुभव करते है।

पारिणामिकभाव : आत्माका त्रिकाली सहज एकरूप स्वभाव, उसे 'परमभाव' कहा है, अन्य चार भाव क्षणिक है, इसलिये उसे 'परमभाव' नहीं कहे है, पारिणामिकरूप परमस्वभाव प्रत्येक जीवमें सदा विद्यमान है।

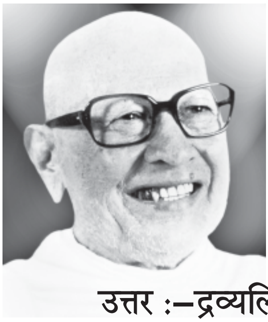

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–क्या भावलिंग भी जीवका स्वरूप नहीं है?

उत्तर :–द्रव्यलिंग तो, सर्वथा ही जीवका स्वरूप नहीं और भावलिंग जो सम्यगदर्शन-चारित्रकी शुद्ध निर्मल पर्याय है और पूर्ण स्वरूप–ऐसे मोक्षका साधक है, वह भी उपचारसे जीवका स्वरूप कहा गया है; परमार्थ सूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयसे वह भी जीवका स्वरूप नहीं है। साधक पर्यायको द्रव्यकी है ऐसा उपचारसे कहा गया है। देहादि अथवा रागादि तो जीवके है ही नहीं; परंतु यहाँ तो भावलिंगकी पर्याय जो मोक्षकी साधक है, उसे भी जीवकी है–ऐसा उपचारसे कहा गया है। पर्यायका लक्ष छुडानेवाली, भेदज्ञानकी पराकाष्ठाको छूनेवाली परमात्मप्रकाशकी ८८वीं गाथामें यह बात कही है। ध्रुवस्वभावके सन्मुख जो ध्यानकी अकषाय साधकपर्याय प्रकट होती है, वह भी उपचारसे जीवका स्वरूप है, परमार्थसे तो त्रिकाली ध्रुव-स्वभाव ही जीवका स्वरूप है–ऐसी बात तो किसी भाग्यशालीके ही कर्णगोचर होती है।

प्रश्न :–एक ओर कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि परद्रव्यको भोगते हुए भी बंधता नहीं और दूसरी ओर कहते हैं कि जीव परद्रव्यको भोग नहीं सकता तो दोनोंमेंसे नित्य किसे माने?

उत्तर :–ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी जीव परद्रव्यको नहीं भोग सकता, परंतु अज्ञानी मानता है कि मैं परद्रव्यको भोग सकता हूँ; अतः यहाँ अज्ञानीकी भाषामें अर्थात् व्यवहारसे कहते हैं कि परद्रव्योंको भोगते हुए भी ज्ञानी बंधता नहीं है, क्योंकि ज्ञानीको रागमें एकत्वबुद्धि नहीं है। अतः परद्रव्यको भोगते हुए भी ज्ञानीको बंध नहीं होता–ऐसा कहते हैं। ज्ञानीको चेतन द्रव्योंका घात होते हुए भी बंध नहीं होता–इससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि स्वच्छंद होकर परजीवका घात होनेमें नुकशान नहीं। इसका आशय यह है कि जिसे रागकी रुचि छूट गयी है और आत्माके आनन्दका भान और वेदन वर्तते हुए भी निर्बलतासे राग आता है तथा चारित्र-दोषके निमित्तसे होनेवाले चेतनके घातसे जो अल्प बंध

बाह्य अंतरंग हेतु पूर्णता लहाय है,
कार्यसिद्ध तहां होय द्रव्यशक्ति पाय है;

होता है, उसे गौण करके 'ज्ञानीको बंध नहीं होता'–ऐसा कहा है; परंतु जिसे रागकी रुचि है और मैं परद्रव्यको मार सकता हूँ, भोग सकता हूँ, ऐसी रुचिपूर्वक भावमें (रागमें) एकत्वबुद्धि होनेसे हिंसाकृत बंध अवश्य होता है।

परसन्मुखतासे होनेवाले परिणामको एकत्वबुद्धिकी अपेक्षा अध्यवसान कहकर बंधका कारण कहा है। परमें एकत्वबुद्धि हुए बिना जो राग होता है, उसे भी अध्यवसान कहते हैं; परंतु उसमें मिथ्यात्वका बंध नहीं होता, अल्परागका बंध होता है, उसे गौण करके, 'बंध नहीं होता'–ऐसा कहते हैं। स्वभावसन्मुख परिणामको भी स्वभावमें एकत्वरूप होनेसे अध्यवसान कहते हैं, परंतु वह अध्यवसान मोक्षका ही कारण है। जो देव-शास्त्र-गुरु और धर्मका स्वरूप समझे, उसे सम्यग्दर्शन होता ही है। ऐसे संस्कार लेकर कदाचित् अन्य भवमें चला जाय तो वहाँ भी यह संस्कार फलेगा।

प्रश्न :–भेदज्ञान करते समय किसकी मुख्यता करनी चाहिये ? पर या पर्याय, ज्ञेय–किससे भेदज्ञान करना चाहिये ?

उत्तर :–यह सब एक ही है। भेदज्ञानका अभ्यास करते समय विचार तो सभी आते हैं, परंतु जोर अंदरका आना चाहिये।

प्रश्न :–अज्ञानी जिज्ञासु जीव स्वभाव और विभावके भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करता है, किन्तु स्वभावको देखे बिना स्वभावसे विभाव भिन्न कैसे होगा ?

उत्तर :–यदि पहलेसे ही जिज्ञासु जीवने स्वभावको ही देखा हो, तब तो भेदज्ञान करानेका प्रश्न ही नहीं उठता। जिज्ञासु पहले अनुमानसे निर्णय करता है कि यह परकी ओर झुकनेका भाव विभाव है, उस विभावमें आकुलता है–दुःख है और अन्तर्लक्षीभावमें शान्ति-सुख है। इसप्रकार वह प्रथम अनुमानसे निश्चय करता है।

प्रश्न :–धर्मका मर्म क्या है ?

उत्तर :–आत्मा अपने स्वभाव-सामर्थ्यसे पूर्ण है और परसे अत्यन्त भिन्न है–ऐसी स्व-परकी भिन्नताको जानकर स्वद्रव्यके अनुभवसे आत्मा शुद्धता प्राप्त करता है–यही धर्मका मर्म है।

प्रश्न :–परलक्षी ज्ञानसे तो आत्मा जाननेमें आता नहीं और अनादि मिथ्यादृष्टिके स्वलक्षी ज्ञान है नहीं तो साधन क्या ? समझाईये।

उत्तर : रागसे भिन्न पड़ना साधन है। प्रज्ञाछैनीको साधन कहो अथवा अनुभूतिको साधन कहो–यह एक ही साधन है। * * *

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *जो उदयभाव क्रममें आ पड़ा हो उसे तो आगे पीछे किया नहीं जा सकता, और उस समय इधरके (तत्त्वके) विचार–मनन टूट जाते हैं तो क्या किया जाय?*

समाधान :—अपनी भावना हो तो पुरुषार्थ करके परिणामको पलट सकता है। यदि परिणाम पलटे न जा सकते हों तो अनादिकालसे कोई जीव पुरुषार्थ करके, भेदज्ञान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ही नहीं सकता। पर्यायका स्वभाव ही पलटनेका है। स्वभावकी भावना करके स्वभावको ग्रहण करे तो विभावपर्यायका परिवर्तन हो। जो पर्याय उधर (विभावमें) जाती है उसे स्वकी ओर मोड़ना वह अपने हाथकी बात है। क्रमबद्ध पुरुषार्थके साथ जुड़ा हुआ होता है। अकेला क्रमबद्ध नहीं होता। क्रमबद्धमें स्वभाव, पुरुषार्थ सब जुड़े हुए होते हैं। जिसे विभाव ही सर्वस्व लगता है और उससे छूटना अच्छा नहीं लगता उसका क्रमबद्ध भी वैसा ही है। जिसे विभाव नहीं रुचता और स्वभाव ही रुचता है उसका क्रमबद्ध भी उसी प्रकारका होता है। उसके पुरुषार्थकी गति स्वभावकी ओर होती है, उसका क्रमबद्ध पुरुषार्थके साथ जुड़ा हुआ है।

प्रश्न :— *सम्यग्दृष्टिको शुभभावका निषेध वर्तता है तथापि ज्ञानीके प्रति सच्ची अर्पणता उसीको होती है, यह विचित्र नहीं लगता?*

समाधान :—स्वभावमें शुभभाव नहीं है इसलिये उसकी दृष्टिमें शुभभावका आदर नहीं होता–ऐसी वस्तुस्थिति है। सम्यग्दृष्टि एक चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करते है, परन्तु बीचमें शुभभाव आये बिना नहीं रहते। चैतन्यतत्त्व ही सर्वस्वरूपसे अंगीकार करने योग्य है। चैतन्यतत्त्व बिना जगत्‌में अन्य कुछ भी सारभूत नहीं है। यह जो विभाव है वह आत्माका स्वभाव नहीं है, वह दुःखरूप–आकुलतारूप है। जिन्होंने ज्ञायकस्वभावको सम्पूर्णरूपसे ग्रहण किया अर्थात् पुरुषार्थ करके स्वरूपमें लीनता होकर केवलज्ञान प्राप्त किया है; तथा जो बारम्बार स्वरूपमें लीन होते हैं ऐसे मुनिवर; उन सबके प्रति सम्यग्दृष्टिको आदरभाव आता है क्योंकि उसे अपने स्वभावका आदर है। मुझे मेरा स्वभाव ही आदरणीय है, विभाव तो

और भांति मोक्षमार्ग होय ना भवीनिको,
आप ही सुवंदनीक हो गुणी ऋषीनिको।६०।

हेयरूप ही है—ऐसे यथार्थ दृष्टि–प्रतीति हुई है; फिर भी जिन्होंने ऐसी दशा प्रकट की है उनकी महिमा भी आती है। मेरा स्वभाव जुदा है और यह विकल्प जुदे हैं। स्वयं शुभरागको आदरणीय नहीं मानता, तथापि शुभभावमें खड़ा है इसलिये शुभभावके निमित्त जो देव–शास्त्र–गुरु उनकी महिमा भी उतनी ही आती है। उसे स्वभावकी महिमा है और विभाव तुच्छ लगते हैं; ऐसा होनेपर भी जिन्होंने उसे प्रकट किया है, जो उसकी साधना कर रहे हैं उनकी महिमा आती है। सम्यग्दृष्टिको अपने स्वभावकी महिमा है इसलिये जिन्होंने स्वभावको प्राप्त किया है ऐसे ज्ञानीयोंके प्रति यथार्थ महिमा आती है।

वह अंतर्दृष्टिमें ऐसा मानता है कि शुभभाव मेरा स्वभाव नहीं है और उसी क्षण भेदज्ञानकी धारा भी वर्तती है।—इसप्रकार उसको शुभभाव आदरणीय नहीं है, तथापि शुभभावका रस अधिक होता है और स्थिति अल्प पड़ती है।

प्रश्न :— *जितना हो सके उतना स्वाध्याय, मनन आदि प्रयत्नपूर्वक करते हैं तथापि व्यावहारिक जीवनमें कई बार झूठ बोलने या मायाचारीके भाव हो जाते हैं; किसी जीवको दुःख होगा ऐसा सोचनेकी भी दरकार नहीं रहती। यद्यपि यह सब बाह्य है, फिर भी क्या उन परिणामोंसे आत्मसाधनामें या अपनी पात्रतामें हानि नहीं होती ?*

समाधान :—स्वयं समझ लेना कि किस प्रकारके भाव आते हैं। मुमुक्षुकी भूमिकामें भीतर आत्मार्थका प्रयोजन मुख्य होता है। आत्मार्थीको शोभा न दें वैसे विचार—मर्यादाको तोड़करके जो हों उस तरहके—आत्मार्थीको नहीं होते, वैसे कार्य भी आत्मार्थीके नहीं होते। जिनमें आत्मार्थिताका पोषण हो, आत्मार्थिता मुख्य रहे वैसे भाव आत्मार्थीके होते हैं। अपनी आत्मार्थिताकी मर्यादा जिनमें टूट जाय वैसे भाव आत्मार्थीको नहीं होते। अपने परिणाम कैसे हैं उनका विचार करके, उनमें कचास हो तो स्वयंको अपनी पात्रता बढ़ानी चाहिये। मुख्य प्रयोजन तो आत्मार्थिताका है। आत्मार्थिताको कहीं भी नुकसान पहुँचे वैसे मर्यादारहित परिणाम आत्मार्थीके नहीं होते।

प्रश्न :— *जितना यह ज्ञान है उतना यह आत्मा है, इसे विशेष स्पष्टतापूर्वक समझानेकी कृपा करें।*

समाधान :—गुण और गुणी अभेद है। जो यह ज्ञानलक्षण दिखाई देता है उतना आत्मा है। ज्ञानके अतिरिक्त सब विभाव एवं पर है। यह जो ज्ञानलक्षण दिखाई देता है उस ज्ञानलक्षणसे तू आत्माको पहिचान ले। जो ज्ञानलक्षण दिखाई देता है उतना आत्मा है। लक्ष्य–लक्षण एक ही है—अभेद है; उसे ग्रहण कर। तू ज्ञायकको ग्रहण कर ले।

बाल विभाग

मनुष्य-जन्मकी दुर्लभताके दस दृष्टांत

(मनुष्य जन्म, आर्यकुल, जैनधर्म मिलना कितना दुर्लभ है, इस सम्बन्धमें शास्त्रमें वर्णन है उस सम्बन्धित कतिपय दृष्टांत जैन आराधना कथाकोषमेंसे यहाँ दिये जा रहे हैं।)

अतिशय निर्मल केवलज्ञानके धारक जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर मनुष्य जन्मका मिलना कितना कठिन है, उस बातको दस दृष्टांतों-उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण किया जाता है। १. चोल्लक, २. पासा, ३. धान्य, ४. जुआ, ५. रत्न, ६. स्वप्न, ७. चक्र, ८. कछुआ, ९. युग और १०. परमाणु।

अब पहले ही चोल्लक दृष्टांत लिखा जाता है, उसे आप ध्यानसे सुनें।

१. चोल्लक

संसारके हितकर्ता नेमिनाथ भगवानको निर्वाण गये बाद अयोध्यामें ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुए। उनके एक वीर सामन्तका नाम सहस्रभट था। सहस्रभटकी स्त्री सुमित्राके संतानमें एक लड़का था। उसका नाम वसुदेव था। वसुदेव न तो कुछ पढ़ा-लिखा था और राज-सेवा वगैरहकी उसमें योग्यता थी। इसलिये अपने पिताकी मृत्युके बाद उसकी जगह उसे न मिल सकी, जो कि एक अच्छी प्रतिष्ठित जगह थी और यह सच है कि बिना कुछ योग्यता प्राप्त किये राज-सेवा आदिमें आदर-मानकी जगह मिल भी नहीं सकती। उसकी इस दशा पर माताको बड़ा दुःख हुआ। पर बेचारी कुछ करने-धरनेको लाचार थी। वह अपनी गरीबीके कारण एक पुरानी गिरी-पड़ी झोपड़ीमें रहने लगी और जिस किसी प्रकारसे अपना गुजारा चलाने लगी। उसके भावी आशासे वसुदेवसे कुछ काम लेना शुरू किया। वह लड्डु, पेडा, पान आदि वस्तुएँ एक खोमचेमें रखकर उसे आस-पासके गाँवमें भेजने लगी, इसलिये कि वसुदेवको कुछ परिश्रम करना आ जाए, वह कुछ होशियार हो जाये। ऐसा करनेसे सुमित्राको सफलता प्राप्त हुई और वसुदेव कुछ सीख भी गया। उसे पहलेकी तरह अब निकम्मा बैठे रहना अच्छा न लगने लगा। सुमित्राने तब कुछ वसीला लगाकर वसुदेवको राजाका अंगरक्षक नियत करा दिया।

एक दिन चक्रवर्ती हवा-खोरीके लिये घोड़े पर सवार हो शहर बाहर हुए। जिस घोड़े पर वे बैठे थे वह बड़े दुष्ट स्वभावको लिये था। सो जरा ही पाँव की ऐड़ी लगाने पर वह चक्रवर्तीको लेकर हवा हो गया। बड़ी दूर जाकर उसने उन्हें एक बड़ी भयावनी वनमें ला गिराया। इस समय चक्रवर्ती बड़े कष्टमें थे। भूख-प्याससे उनके प्राण छटपटा रहे थे। पाठकोंको स्मरण है कि इनके अंगरक्षक वसुदेवको उसकी माँ ने चलने-फिरने और दौड़ने-

दुड़ानेके काममें अच्छा होशियार कर दिया था। यही कारण था कि जिस समय चक्रवर्तीको घोड़ा लेकर भागा, उस समय वसुदेव भी कुछ खाने-पीनेकी वस्तुएँ लेकर उनके पीछे-पीछे बेतहाशा भागा गया। चक्रवर्तीको आध-पौन घंटा वनमें बैठे हुआ होगा कि इतनेमें वसुदेव भी उनके पास जा पहुँचा। खाने-पीनेकी वस्तुएँ उसने महाराजको भेंट की। चक्रवर्ती उससे बहुत संतुष्ट हुए। सच है, योग्य समयमें थोड़ा भी दिया हुआ सुखका कारण होता है। जैसे बुझते हुए दीपमें थोड़ा भी तेल डालनेसे वह झटसे तेज हो उठता है। चक्रवर्तीने खुश होकर उससे पूछा तू कौन है ? उत्तरमें वसुदेवने कहा—महाराज, सहस्रभट सामन्तका मैं पुत्र हूँ, चक्रवर्ती फिर विशेष, पूछताछ करके चलते समय उसे एक रत्नमयी कंकण देते गये।

अयोध्यामें पहुँचा कर ही उन्होंने कोतवालसे कहा—मेरा कड़ा खो गया है, उसे ढूँढकर पता लगाइये। राजाज्ञा पाकर कोतवाल उसे ढूंढनेको निकला। रास्तेमें एक जगह इसने वसुदेवको कुछ लोगोंके साथ कड़ेके सम्बन्धकी ही बात-चीत करते पाया। कोतवाल तब उसे पकड़ कर राजाके पास लिवा ले गया। चक्रवर्ती उसे देखकर बोले—मैं तुझ पर बहुत खुश हूँ। तुझे जो चाहिये वही माँग ले। वसुदेव बोला—महाराज, इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता कि मैं आपसे क्या माँगू। यदि आप आज्ञा करें तो मेरी माँ से पूछ आऊँ। चक्रवर्तीके कहनेसे वह अपनी माँ के पास गया और उसे पूछ आकर चक्रवर्तीसे उसने प्रार्थना की महाराज, आप मुझे चोल्लक भोजन कराइए। उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। तब चक्रवर्तीने उनसे पूछा—भाई, चोल्लक भोजन किसे कहते हैं ? हमने तो उसका नाम भी आज तक नहीं सुना। वसुदेवने कहा—सुनिये महाराज, पहले तो बड़े आदरके साथ आपके महलमें मुझे भोजन कराया जाए और खूब अच्छे-अच्छे सुंदर कपड़े, गहने-दागीने दिये जायें। इसके बाद उसकी तरह आपकी रानियोंके महलोंमें क्रम-क्रमसे मेरा भोजन हो। फिर आपके परिवार तथा मंडलेश्वर राजाओंके यहाँ मुझे इसी तरहका भोजन कराया जाय। इतना सब हो चुकने पर क्रम-क्रमसे फिर आप ही के यहाँ मेरा अंतिम भोजन हो। महाराज, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी आज्ञासे मुझे यह सब प्राप्त हो सकेगा।

भव्यजनों ! इस उदाहरणसे यह शिक्षा लेनेकी है कि यह चोल्लक भोजन वसुदेव सरीखे कंगालको शायद प्राप्त भी हो जाय तो भी इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं, पर एक बार प्रमादसे खो-दिया गया मनुष्य जन्म बेशक अत्यंत दुर्लभ है। फिर लाख प्रयत्न करने पर भी वह सहसा नहीं मिल सकता। इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि वे दुःखके कारण खोटे मार्गको छोड़कर जैनधर्मका शरण लें, जो कि मनुष्य जन्मकी प्राप्ति और मोक्षका प्रधान कारण है।

(क्रमशः)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

दिये गये विकल्पोंमेंसे योग्य विकल्प पसंद करके रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।

(१) अव्याबाध गुण .... परमेष्ठी भगवानको होता है।(उपाध्याय, सिद्ध, अरिहंत)

(२) भव्यत्व वह जीवका .... भाव है। (क्षायिक, पारिणामिक, औदयिक)

(३) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निरपेक्ष केवल ध्रौव्यको माना जाय तो द्रव्य .... कहा जायेगा। (अपरिणामी, परिणामी, नित्य)

(४) निश्चयनय सम्बन्धी विषयका त्याग करनेका नहीं है, लेकिन निश्चयनय सम्बन्धी .... का त्याग करनेका है। (संकल्प, विकल्प, व्यवहार)

(५) स्वाध्याय वह .... परमेष्ठीका मूल गुण है। (साधु, उपाध्याय, आचार्य)

(६) जैसे अग्निकी एक चिनगारी विशाल वनको भस्म कर देती है उसी प्रकार अनादि मोहको क्षणमात्रमें भस्म कर दे ऐसी .... शक्ति आत्मामें है। (सुख, विभुत्व, वीर्य)

(७) सम्यग्दर्शन प्राप्ति समयमें अतिन्द्रिय आनंदका वेदन .... में होता है। (गुण, द्रव्य, पर्याय)

(८) .... भाव सादि अनंत होते हैं। (औपशमिक, क्षायिक, पारिणामिक)

(९) जंबूद्वीपमें .... ऐरावत क्षेत्र है। (पांच, दो, एक)

(१०) ....तीर्थंकर भगवान पद्मासनसे मोक्ष गये है।(अरहनाथ, नेमिनाथ, विमलनाथ)

(११) दो इन्द्रिय जीवको .... पर्याप्ति होती है। (चार, तीन, पांच)

(१२) मुनिके छह आवश्यकमें कोई एक तीर्थंकर भगवान अथवा परमेष्ठी भगवानको नमस्कार करना .... है। (वंदना, स्तुति, समता)

(१३) घटको जाननेके समय घटज्ञान नहीं कहकर सिर्फ ज्ञान कहना वह .... व्यवहारनयका कथन है।(अनुपचरित सद्भुत, उपचरित सद्भुत, अनुपचरित असद्भुत)

(१४) सोलहकारण भावनामें पापोंसे बचना और धर्म या धर्मके फलमें अनुराग करना वह .... भावना है। (विनय संपन्नता, शीलव्रत अनतिचार, संवेग)

(१५) जीवके राग-द्वेषके परिणाम वह .... है। (विभाव अर्थ पर्याय, स्वभाव अर्थ पर्याय, विभाव व्यंजन पर्याय)

(१६) केवली भगवानको कर्मका बंधन नहीं क्योंकि उन्हें .... है।
(ज्ञेयार्थ परिणमन, ज्ञेय सन्मुख वृत्ति, ज्ञप्ति क्रिया)

(१७) .... शास्त्रमें आगम, युक्ति, परापर गुरुका उपदेश और स्वसंवेदन इस चार प्रकारसे आचार्यदेव शुद्धात्माका स्वरूप बताते हैं।(नियमसार, समयसार, प्रवचनसार)

(१८) केवलज्ञान .... ज्ञान है। (एकदेश प्रत्यक्ष, परोक्ष, सकल प्रत्यक्ष)

(१९) मतिज्ञानके चार भेदमेंसे अवग्रहसे जाने हुए पदार्थको विशेष जाननेकी इच्छाको .... कहते हैं। (ईहा, अवाय, धारणा)

(२०) किसी जीवके प्रति अनुकंपा अथवा विनाश हेतु छठवे गुणस्थानवर्ती मुनिके शरीरमेंसे कुछ आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना उसे .... समुद्घात कहते है।
(तैजस, वैक्रियक, वेदना)

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) सिद्ध	(७) पर्याय	(१३) अनुपचरित सद्भुत	(१६) ज्ञप्तिक्रिया
(२) पारिणामिक	(८) क्षायिक	(१४) संवेग	(१७) समयसार
(३) अपरिणामी	(९) एक	(१५) विभाव अर्थपर्याय	(१८) सकल प्रत्यक्ष
(४) विकल्प	(१०) नेमिनाथ		(१९) इहा
(५) आचार्य	(११) पाँच		(२०) तैजस
(६) वीर्य	(१२) वंदना		

(पृष्ठ २२ का शेष भाग) (छहढाला प्रवचन)

हो जाता है। राग वह आत्मगुण नहीं अर्थात् रागके आश्रयसे आत्माका कोई गुण (सम्यग्दर्शनादि) प्रकट होता नहीं है। सभी गुणोंकी निर्मल पर्याय आत्माके ही आश्रयसे परिणमित होती है; स्वयंके ज्ञानादि गुण-पर्यायोंको धारण करनेवाली वस्तु आत्मा ही है। जिसमें जो गुण ही नहीं उसके आश्रयसे तो गुणका कार्य प्रकट होता नहीं है; जिसमें गुण हो उसीके आश्रयसे उसका कार्य प्रकट होता है। जिसमें ज्ञान हो उसे आश्रयसे केवलज्ञान होता है, जिसमें आनंद हो उसके आश्रयसे आनंद होता है। जिसमें ज्ञान या आनंद है ही नहीं उसके आश्रयसे वह कहाँसे प्रकट होगा ? इसलिये हे जीव ! परका आश्रय छोड और स्वद्रव्यकी सामने देखकर ही उसका आश्रय कर... यह कार्य त्वरित कर अर्थात् शीघ्रतासे कर। आत्माके हितके इस कार्यमें तू विलम्ब मत कर। (क्रमशः) ✻

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।)

(१) मिथ्यादृष्टि जीव .... ग्रैवेयक तक जा सकता है।
(२) भगवान .... दोषसे रहित होते है।
(३) देव और नारकीके स्थूल शरीरको .... शरीर कहते है।
(४) कामदेव संख्यासे .... होते हैं।
(५) मानके अभावमें .... धर्म प्रगट होते हैं।
(६) अरिहंत भगवानके शरीरको .... शरीर कहनेमें आता है।
(७) जिन जीवोंने अभी तक त्रस पर्याय प्राप्त न की हो ऐसे जीवको .... निगोद कहते हैं।
(८) श्रुतपंचमी .... दिन मनायी जाती है।
(९) काल द्रव्यको स्थान देनेमें ....द्रव्य निमत्त है।
(१०) काल द्रव्य ....प्रदेशी है।
(११) जो रागी-द्वेषी भगवान हो तो उसे .... कहते है।
(१२) पूज्य गुरुदेवश्री सभी जीवोंको .... कहते थे।
(१३) भगवान आदिनाथ .... पर्वतसे मोक्ष प्राप्त हुए है।
(१४) आस्रवके दो भेद (१) .... और (२) .... हैं।
(१५) बिन छने पानीकी एक बूंदमें ....जीव होते हैं।
(१६) प्रथम गुणस्थानका नाम .... है।
(१७) जो निर्ग्रंथ होते है उन्हें .... कहा जाता है।
(१८) नमस्कार मंत्रमें .... को नमस्कार किया गया है।
(१९) छह द्रव्योंके समूहको .... कहते है।
(२०) अरिहंत (तीर्थंकर) भगवानको .... गुण होते हैं।

बालकोंके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) नववीं	(६) परम औदारिक	(११) कुदेव	(१६) मिथ्यात्व
(२) अठारह	(७) नित्य	(१२) भगवान आत्मा	(१७) मुनिराज
(३) वैक्रियिक	(८) ज्येष्ठ शुक्ल-५	(१३) कैलाश	(१८) पंच परमेष्ठी
(४) २४	(९) आकाश	(१४) द्रव्य और भाव	(१९) विश्व
(५) मार्दव	(१०) एक	(१५) असंख्य	(२०) छ्यालीस

श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलों द्वारा

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका ९३वाँ सम्यक्त्व जयंति महोत्सव सानंद संपन्न

९३वाँ सम्यक्त्वजयंति महोत्सव पूज्य गुरुदेवश्रीकी पवित्र साधनाभूमि अध्यात्म अतिशयक्षेत्र सुवर्णपुरी (सोनगढ)में ता. २०-३-०२०२५, गुरुवार से २४-३-२०२५, सोमवार तक भक्तिभाव सह मनाया गया ।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

यह मंगल महोत्सवमें प्रतिदिन क्रमशः सुबह पूज्य गुरुदेवश्री तथा पूज्य बहिनश्रीका मांगलिक, पूज्य बहिनश्रीकी विडियो-धर्मचर्चा मंडपमें, परमागममंदिरमें श्री जिनसहस्रवसुनाम पूजन विधान, पूज्य बहिनश्रीकी महिमा दर्शाते विविध बेनरोंसे सुशोभित मंडपमें पूज्य गुरुदेवश्रीका 'श्री समयसार' पर सीडी प्रवचन, पूज्य बहिनश्रीकी विशेष भक्ति, धार्मिक शिक्षणवर्ग, दोपहरमें पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री पुरुषार्थसिद्धि उपाय पर सीडी प्रवचन, जिनेन्द्र भक्ति, धार्मिक शिक्षणवर्ग तथा सांजीभक्ति, रात्रिको पूज्य गुरुदेवश्रीका 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर प्रवचन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इस प्रकार दैनिक क्रम चलता था । सांस्कृति कार्यक्रमोंमें प्रथम दिन ब्रह्मचारिणी बहिनें वर्षो पूर्व आश्रममें पूज्य बहेनश्रीकी सम्यक्त्व जयंती मनाती थी उसकी विडियो रेकोर्डिंग दर्शाई गई थी। दूसरे दिन आराधनाकी देवी फिल्म के कतिपय अंश, तीसरे और चौथे दिन श्री आदिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव-२०२४की फिल्म जो हालमें प्रदर्शित हुई है उसे दर्शाया गया था। जिसे देखकर सभीने पंचकल्याणक प्रसंगको पुनः स्मरण किया था। उत्सवके सभी कार्यक्रमोंमें मुमुक्षुओंने उत्साहसे लाभ लिया था।

पूज्य बहिनश्रीकी बधाई

ता. २४-३-२०२५ सोमवारके दिन श्री जिनसहस्रवसुनाम पूजन समापन पश्चात् मंडपमें पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनके बाद प्रासंगिक उद्घोषणाएँ, आभारविधि तथा बृहद् मुंबई दिगंबर जैन मुंमुक्षु मंडलों द्वारा आगामी मनाये जानेवाली पूज्य गुरुदेवश्रीकी १३६वीं जन्मजयंतीका अग्रीम निमंत्रण दिया गया था। पश्चात् प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीके चित्रपट समक्ष उनकी मंगल बधाईका विशेष कार्यक्रम रखा गया था। इस विशेष कार्यक्रमोंमें सभी मुमुक्षु भाईओं-बहिनोंने उत्साहसे भाग लिया था। इस प्रसंग पर भजनमंडलीके मधुर भक्ति-गीतोंसे वायुमंडलको भक्तिमय एवं अत्यंत रोचक बना दिया था । आयोजक द्वारा आवास एवं भोजन व्यवस्था सुंदर प्रकारसे की गई था। आयोजकोंका उत्साह एवं आयोजन सराहनीय था।

पूज्य गुरुदेवश्रीकी १३६वीं जन्मजयंतिकी मंगल पत्रिका लेखनविधि संपन्न

परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका १३६वाँ जन्म-जयंति महोत्सव कि जो बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा मनाया जानेवाला है उस महोत्सवकी निमंत्रण पत्रिका लेखनविधि ता. २३-३-२०२५ रविवारके मंगल दिन सानंद संपन्न हुई । प्रातः परमागममंदिरमें पूजनके बाद सभी मुमुक्षु श्री कांतिलाल हरिलाल शाहके निवासस्थान कहाननगरमें गये थे। वहाँ पर भक्तिके साथ अक्षतसे पत्रिकाकी बधाई की गई । पश्चात् पत्रिकाको गाजे-बाजेके साथ उत्साहपूर्वक मंडपमें लायी गयी। वहाँ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन और प्रासंगिक घोषणा पश्चात् आयोजक मुमुक्षु संघकी ओरसे श्री दीपकभाई कांतिलाल शाह द्वारा पत्रिकाका भावपूर्व वांचन

किया गया तत्पश्चात् पत्रिका लेखनविधि मुमुक्षुओंकी उपस्थितिमें भजनमंडलीकी भक्तिसह सानंद संपन्न हुई। निमंत्रण पत्रिका लेखनविधि सौजन्यका लाभ कांताबेन कांतिलाल हरिलाल शाह परिवार हस्ते लताबेन निरंजनभाई शाह, चेतनाबेन दीपकभाई शाह, कार्तिक, धारा, शीतल, जिनंदा, अमी, प्रतीति, नीर्वी, जैनी, आर्वाको प्राप्त हुआ था।

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-१५ से ६-३५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-०० : श्री नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री पुरुषार्थसिद्धि उपाय पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

सोनगढ प्रतिष्ठा का आनंदोत्सव

हमारे तारणहार पूज्य कहानगुरुदेव एवं भगवती माता की साधनाभूमि में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ द्वारा आयोजित **श्री आदिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-२०२४**के भव्य आयोजन से संपूर्ण भारत एवं समग्र विश्व परिचित है, हजारों मुमुक्षु भाई-बहन उस महामहोत्सव के साक्षी बने थे।

इस आयोजन को युगों तक जीवंत रखने हेतु ट्रस्ट द्वारा श्री बाहुबली मुनीन्द्र की प्राणप्रतिष्ठा, जम्बूद्वीप आदि के भगवंतों की प्रतिष्ठा महोत्सवके नव दिनों के सर्वप्रसंगों को संकलित करके एक अद्भुत फिल्म ''पंचकल्याणक'' का निर्माण किया गया, जिसे दिनांक २३ फरवरी को सिनेमाघरों में प्रदर्शित किया गया। अभी तक दिनांक २३ फरवरी से १६ मार्च २०२५ के बीच भारत के लगभग २७ मन्दिर-मण्डल द्वारा १२००० से भी अधिक साधर्मियों हेतु ५५ से अधिक शो नजदीकी सिनेमाधरों में आयोजित किये जा चुके है। जिसमें मुम्बई(विलेपार्ला, बोरीवली, मलाड, वसई, दादर, घाटकोपर, मुलुन्ड एवं झवेरी बाजार) सूरत, कोलकता, इन्दौर, उदयपुर, कोटा, पटना, चेन्नई, ग्वालियर, राजकोट, भावनगर, अहमदाबाद, वडोदरा, सुरेन्द्रनगर, हैद्राबाद, एवं कोईम्बतूर आदि शहर समाहित हैं। सभी मुमुक्षुओं ने इस प्रतिष्ठा फिल्म को एक साथ देखा, सराहा और उस महामहोत्सवको पुनः स्मरण किया। अभूतपूर्व सफलता प्राप्त इस फिल्म को अपने शहरमें दर्शाने का साधर्मीओं में अति उत्साह है।

आपके शहर में यह 'पंचकल्याणक' फिल्म के शो सम्बन्धित विशेष जानकारी हेतु (१) देवांग महेता (**Mo. 9022158408**)(२) संयम जैन (**Mo. 7240398641**) का सम्पर्क करें।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

• (आत्मा) स्वयं त्रिकाल-शक्तिमान है। गुणरूप त्रिकाली-शक्ति व पर्याय अर्थात् वर्तमान-दशा-ऐसे द्रव्य-गुण-पर्यायके विचारपूर्वक निजपदको जानना होता है; निमित्त अथवा राग द्वारा जानना नहीं बतलाया है। इस प्रकार निजपदको जाननेकी विधि बतलायी है। उपयोगमें जाननस्वरूप-बस्तुको जाने, अन्तरमें जानने-देखनेके होने वाले व्यापार द्वारा वस्तुको जाने, कि वस्तु ज्ञायक है; वही निजस्वरूपको जाननेकी कला है, इसीका नाम धर्म है। चलती पर्यायमें जाननस्वरूप-वस्तुको जाने कि जाननेवाला स्वभाव, नित्यानन्द पदार्थ है—वह आत्मा, पर्यायका आधार अथवा नाथ है।६७९।

• अनुभव-प्रकाशका अर्थ क्या? आत्माका निजानन्दस्वरूप है, उसकी पर्यायमें होनेवाले पुण्य-पाप तो वेष हैं—उनकी रुचि छोड़कर स्वभावका अनुभव करना – यही अनुभव-प्रकाश है।६८०।

• निर्विकल्प कहो या आत्मानुभव कहो—दोनों एक ही हैं। जीवकी शक्ति तो तीन-काल व तीन-लोकको जाननेकी है। उसमें ज्ञान ज्ञानका वेदन करे उतना ज्ञानका विकास हुआ, वह (विकसित) अंश ही सर्वज्ञ-शक्ति प्रकट करेगा। सर्वज्ञ-शक्ति तो त्रिकाल है, उसका वेदन हुआ है। सर्वज्ञ-शक्तिके आधारसे ही स्वसंवेदन होता है। पुण्य-पापके आधारसे ज्ञान नहीं होता।६८१।

• प्रत्येक पदार्थ सर्वत्र, सर्वकाल अपने ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें प्रतिष्ठित रहता है; पर-चतुष्टयमें नहीं। इस एक महासिद्धान्तका निर्णय हो जाए तो त्रिकाल व त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थोकी यथार्थ प्रतीति हो जाए और स्वतंत्र-ज्ञानानन्द-स्वभाव-सन्मुख होनेकी रुचि व स्थिरता हो जाए—यही सुखी होनेका उपाय है।६८२।

• पदार्थ, द्रव्यरूपसे नित्य है व पर्यायरूपसे अनित्य है। ऐसी नित्यानित्यता तो पदार्थका स्वरूप है—ज्ञान ऐसा जानता है। संयोगके कारण अनित्यता है—ऐसा नहीं है; पर अपने कारणसे ही अनित्यता है, अर्थात् पलटते रहना तो पर्यायका स्वभाव है सो परके कारणसे नहीं है। इस प्रकार ज्ञेयका स्वरूप-जानना ही सम्यग्ज्ञानका कारण है।६८३।

• आत्माकी शांतिरूप-प्रकाशको अनुभव कहते हैं। आत्मामें शान्ति व आनन्द शक्तिरूपसे, अनादि-अनन्त विद्यमान हैं। ऐसे आत्माका पुण्य-पाप रहित अनुभव हो उसे धर्म कहते हैं। अकषाय-परिणाम के प्रकाश को अनुभव-प्रकाश कहते हैं।६८४।

आत्मधर्म
अप्रैल २०२५
अंक-८, वर्ष १९

Posted at Songadh PO
Publish on 5-4-2025
Posted on 5-4-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org